सरस-पिङ्गल

अर्थात्

संक्षिप्त छंद-शास्त्र

छंद-रचना, मात्रा एवं वर्ण प्रस्तारादि की मार्मिक ज्ञानप्रद, सर्वांग-पूर्ण नई पुस्तक

लेखक

सुकवि पं रामचन्द्र शुक्ल "सरस", प्रयाग

प्रकाशक

रामनरायन लाल

पब्लिशर और बुकसेलर

इलाहाबाद

द्वितीयवार १००० } १९३२ { मूल्य ।=)

प्रकाशक
रामनरायन लाल
पब्लिशर और बुकसेलर
इलाहाबाद।

मुद्रक
शारदाप्रसाद खरे,
हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग

श्रद्धेय डाक्टर रामप्रसाद जी त्रिपाठी
एम० ए०, डी० एस० सी०
प्रोफेसर प्रयाग-विश्वविद्यालय

समर्पण

श्रद्धेय त्रिपाठी जी !

सेवा का यह सुमन-हार है,
है प्रणयी-मानस का प्यार।
ठुकरा मत देना चरणों से,
मेरा यह छोटा-उपहार ॥

दीपावली
सँ० १९८५ वि०

विनीत
रामचन्द्र शुक्ल 'सरस'

सन्दर्भ-सूची

विषय			पृष्ठ

विषय पृष्ठ

दो शब्द

कवि होने और काव्य करने के लिए सब से आवश्यक बात काव्य-शास्त्र का ज्ञान प्राप्त करना है। साहित्य सेवियों एवं साहित्य जिज्ञासुओं के लिए भी काव्य-शास्त्र का ज्ञान प्राप्त करना न केवल आवश्यक ही है वरन् अनिवार्य भी है, क्योंकि उसके बिना साहित्यावलोकन से उन्हें आनन्द प्राप्त होना तो दूर रहा, कतिपय कठिनाइयों का सामना भी करना पड़ेगा और साहित्य से पूर्ण-परिचय भी न प्राप्त हो सकेगा।

काव्य-शास्त्र के दो मुख्य विभाग हैं:—१. अलङ्कार-शास्त्र जिसमें काव्यान्तर्गत गुण, दोष, शब्द-शक्ति (लक्षणा, व्यञ्जना, ध्वनि आदि), अलङ्कार एवं रस आदि का जो काव्य के मुख्य तत्व हैं वर्णन होता है। २ :—छन्द-शास्त्र या पिङ्गल जिसमें कविता के कलेवर की रचना करने वाले वर्णों की सुव्यवस्थित नीतियों एवं रीतियों और उनसे उत्पन्न होने वाली छन्दों के नियमों का निरूपण किया जाता है।

अनेक धन्यवाद है उन आचार्य्यों को जिन्होंने शब्द-ब्रह्म की उपासना कर प्रकृति के मञ्जुलातिमञ्जुल मर्मों के संनिरीक्षण के द्वारा सङ्गीत एवं कविता को जन्म दिया है। धन्य हैं महर्षि पिङ्गल जिन्होंने दोनों के सुन्दर सामञ्जस्य के लिए छन्दों का आविष्कार करके छन्द-शास्त्र की रचना की है। साथ ही धन्यवाद के पात्र हैं वे आचार्य एवं लेखक भी जिन्होंने इस शास्त्र के सिद्धान्तों पर सूक्ष्म दृष्टिपात करते हुए इसका विकाश एवं प्रकाश किया है।

हमारी यह प्रस्तुत-पुस्तक इन्हीं आचार्यों के आधार पर आधारित हो विद्यार्थियों को छन्द-शास्त्र का परिचय देने के लिए रक्खी गई है। इसमें इस बात का विशेष प्रयत्न किया गया है कि विद्यार्थियों को इस विषय के पढ़ने में कठिनता और असुविधा न पड़े।

छन्द-शास्त्र का विषय बहुत विस्तृत और गंभीर है, तथा अच्छे श्रमपूर्ण अध्ययन और मनन की आवश्यकता रखता है, जा हमारे विद्यार्थियों की प्रारम्भिक दशा में असाध्य एवं दुस्तर है, अतएव छन्द-शास्त्र के आवश्यक और प्रमुख सिद्धान्तों को हमने इस पुस्तक में सरलता, सूक्ष्मता और सुबोधता के साथ समझाने का प्रयत्न किया है। हम इस कार्य में कहाँ तक सफल हुए हैं, यह हमारे कहने की बात नहीं। हाँ, हम इतना अवश्य कह देना चाहते हैं कि इस विषय की जितनी पुस्तकें विद्यार्थियों के लिए लिखी गई हैं, और जो प्राप्य हैं उनसे हमने इस पुस्तक में बहुत कुछ विशेषता रखने का प्रयत्न किया है। हमने उन सब को अच्छी प्रकार देख कर ही यह पुस्तक लिखी है। कतिपय ऐसी बातें हैं जो इसमें नयी रक्खी गई हैं और वे मौलिक और आवश्यक हैं, पाठक उन्हें स्वयमेव देख लेंगे।

हमें आशा है कि यह छोटी सी पुस्तक विद्यार्थियों को अवश्य पर्याप्त लाभ पहुँचा सकेगी और हमारे विद्यार्थी इसे अवश्य अपनायेंगे।

—रामचन्द्र शुक्ल "सरस"

काव्य-कुटीर
शरद पूर्णिमा सं० १९८५ वि०

सरस-पिङ्गल

काव्य

यों तो काव्य की कई परिभाषायें भिन्न भिन्न आचार्य्यों के द्वारा
। गई हैं, किन्तु सर्व साधारण एवं सर्वमान्य परिभाषा यही है कि:—

"सुन्दर सरस पदावली, भली माधुरी रम्य।
स्वाभाविक भाषा, छटा, भव्य भाव-गति-गम्य॥
काव्य कहत हैं ताहि बुध,.. ......"
('श्रीरसाल' कृत) 'नाट्य-निचय से'

अर्थात् स्वाभाविक भाषा की वह मृदु-मञ्जुल पदावली एवं
क्यावली जिसमें मनोरञ्जक, माधुर्यमयी सरसता तथा
मत्कृत चातुर्य्यपूर्ण पद-विन्यास की रोचकता होती हैं 'काव्य'
हलाती है।

काव्य-भेद

आचार्य्यों ने काव्य के भिन्न भिन्न सिद्धान्तों के अनुसार भिन्न
मन्न प्रकार के भेद किये हैं। जैसे:—

इंद्रिय सम्बन्धी

१—श्रुति और दृश्य (नाटक आदि)

संगीतात्मक

२—गद्य काव्य, पद्य काव्य, और चम्पू (मिश्रित)।

विषयात्मक

३—प्रबन्ध काव्य एवं मुक्तक काव्य

४—भाषा के विचार से—हिन्दी भाषा काव्य के निम्न भेद हो सकते हैं:—

कः— ब्रज-भाषा-काव्य (सूर, देव, पद्‌माकरादि ने)
खः— अवधी-भाषा काव्य (जायसी एवं तुलसीदास ने)
गः— मिश्रित (भिन्न भिन्न प्रान्तीय बोलियों के संमिश्रण से) (लाल कवि, मीरा बाई आदि ने)
घः— खड़ी बोली (बा० मैथिली शरणादि ने)
ङः— नागरिक भाषा में (पं० अयोध्या सिंह ने)
चः— ग्राम्य (पं० प्रताप नारायण मिश्र, कबीरादि ने)
छः— साहित्यिक भाषा में (पं० अयोध्या सिंह व महावीर प्रसाद द्विवेदी ने)

यहाँ पर हम केवल श्रुति काव्यान्तर्गत पद्यकाव्य की ही विशेष विवेचना करेंगे क्योंकि यही हमारा विषय है।

पद्य काव्य

श्रुतिकाव्यान्तर्गत वह काव्य है जिसमें गद्यवत्ता नहीं होती वरन् जो संगीत के आधार पर चलता है। काव्य अपने उक्त गुणों (रसात्मिकतादि) के कारण अलौकिक आनन्द का देनेवाला होता ही है, किन्तु यदि उसमें सङ्गीत की भी पुट दे दी जाती है तो वह और भी अधिक मनोरञ्जक, मधुर और समाकर्षक हो जाता है। सङ्गीत स्वभावतः ही विशेष रोचकता रखता तथा विशिष्टानन्द देता है। इसीलिए काव्य में सङ्गीत का समावेश करके हमारे मान्य आचार्य्यों ने पिङ्गल-शास्त्र को जन्म दिया है। कह सकते हैं कि सङ्गीत सम्बन्धी काव्य अथवा पद्य-काव्य तो 'कविता'*है; और दूसरे प्रकार का काव्य गद्य-काव्य है।

---

*"मात्रा वर्ण विधान युत, जहाँ व्यवस्थित छंद।
सरस भाव, चातुर्य, छवि, तहँ कविता आनंद॥"

पिङ्गल-शास्त्र

काव्य में सङ्गीत-सौन्दर्य के लाने के लिए जिन विशिष्ट रीतियों, नीतियों एवं शैलियों की विवेचना की जाती है तथा नियमों के आधार पर कविता चलाई जाती है अथवा कवियों के द्वारा उसे चलाना चाहिये उनकी विवेचना जिस शास्त्र में होती है, उसे 'पिङ्गल-शास्त्र' कहते हैं। कविता सम्बन्धी इन नियमों को एक शास्त्रीय (वैज्ञानिक) व्यवस्था-विधान में यथाक्रम रखने वाले प्रथम आचार्य्य पूज्यवर श्री० पिङ्गल जी हुए थे; इसीलिए यह शास्त्र (छन्द शास्त्र) उन्हीं के नामसे ही विख्यात हुआ। इनके पश्चात कतिपय अन्य आचार्यों ने इस शास्त्र का विकाश एवं इसकी वृद्धि की है और अब तक विद्वान कवि इस क्षेत्र को विस्तृत ही करते चले आये हैं; और सम्भवतः इसका विकाश करते ही चले जायँगे। यहाँ पर हम पिङ्गल-शास्त्र का इतिहास न देकर केवल इतना ही कह देना चाहते हैं कि यद्यपि वेदों के समय में भी सम्भवतः पिङ्गल-शास्त्र अवश्य रहा होगा, क्योंकि वेदों में भी भिन्न भिन्न प्रकार की छन्दें एवं वृत्तियाँ पाई जाती हैं, जैसे—अनुष्टुप, गायत्री, आर्य्या, और पृथ्वी इत्यादि, तथापि पिङ्गल-शास्त्र का जन्म कदाचित् वास्तव में महर्षि वाल्मीकि के पश्चात् ही हुआ होगा, क्योंकि वे ही आदि कवि माने गये हैं। उन्होंने वैदिक-छंदों से सहायता लेते हुए उनसे पृथक अन्य नवीन छंदों का आविष्कार किया था। अस्तु, यह विषय जटिल और गम्भीर है, अतः यहाँ उपेक्षणीय है।

गन्धर्व-वेद एक उपवेद है, कदाचित् इसी से सहायता लेकर काव्य में पद्यवत्ता और सङ्गीतात्मक लयपूर्ण धारावाहिकता जो मन को विशेष रुचिकर होती है* लाई गई है, और एतदर्थ मात्राओं, एवं

* Nothing is sweeter than music. **अर्थात सङ्गीत से मधुतर और कुछ नहीं।**

वर्णों आदि की गणना, व्यवस्था तथा उनका एक विशेष क्रम, स्थान तथा विधान के साथ संगुम्फन करने की रीतियाँ कल्पित की गईं हैं। दूसरा कारण पिङ्गल-शास्त्र के जन्म का कदाचित् यह भी हो सकता है कि कवियों के लिये पद्य-काव्य के रचनार्थ ऐसे मार्ग निश्चित हो जायँ जिनके द्वारा काव्य, कविता के रूप में होकर अपने अभीष्ट को सरलता एवं सुख के साथ पहुँच सके।

गद्य की अपेक्षा पद्य में कुछ ऐसे विशेष गुण हैं जिनसे आकृष्ट होकर काव्य में सङ्गीतात्मक पद्य-वत्ता लाने की आवश्यकता अनिवार्य्य हुई और पिङ्गल-शास्त्र का जन्म हुआ।

कहना न होगा कि पद्य अपने विशेष गुणों के ही कारण इतनी प्रधानता, रोचकता और व्यापकता को पहुँच गया कि प्रत्येक विषय में इसका समावेश पूर्ण रूप से हो गया, और प्रायः सभी विषय पद्यात्मक हो गये। यह बात विशेषतया संस्कृत में है।

सङ्गीत और काव्य के सम्मिश्रण का एकमात्र फल पिङ्गल-शास्त्र है, यही कविता को गद्य-काव्य से पृथक करता है।

ध्यान रखना चाहिये कि यद्यपि सङ्गीत का सम्बन्ध काव्य से है और काव्य का भी सम्बन्ध संगीत से है—दोनों में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है—फिर भी दोनों एक नहीं, वरन् पृथक पृथक हैं—दोनों की रीतियाँ तथा नीतियाँ भिन्न ही भिन्न हैं।

छन्द (वृत्ति)

सङ्गीत से सम्बन्ध रखने वाले वर्णों और मात्राओं की एक विशिष्ट व्यवस्थात्मक गद्य की वह गति है जो पद्यवत्ता रखती है और गाई जा सकती है। विचार में रखने की बात यह है कि छन्द वर्णों (ह्रस्व, दीर्घादि) की विशिष्ट व्यवस्था एवं गणना के आधार

पर तथा सङ्गीत, लय, ताल एवं राग-रागिनी आदि को उत्कर्ष देने वाली स्वरों की विशेष व्यवस्था के आधार पर समाधारित होता है, यही दोनों में मुख्य अन्तर है।

निष्कर्ष रूप में यों कहना चाहिए कि छन्द में मात्राओं और वर्णों की विशेष व्यवस्था एवं गणना होती है, तथा सङ्गीतसम्बन्धी लय और गति वाली धाराबाहिकता होती है।

वर्ण दो प्रकार के होते हैं:—ह्रस्व और दीर्घ, अथवा लघु और गुरु।

नोट:—छन्दों में प्लुत वर्णों का विचार जैसा व्याकरण में किया गया है नहीं किया जाता, और उनमें प्लुत वर्ण नहीं रक्खे जाते। वैदिक-छन्दों में यह बात नहीं, वहाँ प्लुत-वर्ण भी स्वतंत्रता से आते हैं।

हिन्दी-भाषा की छन्दों में प्रायः ऐसा भी होता है कि ह्रस्व-वर्ण कभी कुछ दीर्घ और दीर्घ वर्ण कभी कुछ ह्रस्व पढ़े जाते हैं। यह बात संस्कृत-काव्य की छन्दों में नहीं पाई जाती है। हिन्दी-भाषा में यह भी देखा जाता है कि कुछ शब्द ऐसे वर्ण रखते हैं जो न तो ह्रस्व ही बोले जाते हैं और न दीर्घ ही, वरन् उनका उच्चारण ह्रस्व और दीर्घ दोनों स्वरों के बीच वाले स्वर के साथ होता है। खेद है कि हमारे आचार्यों ने इस प्रकार के ह्रस्व और दीर्घ के माध्यमिक-स्वरोच्चार को प्रकाशित या सूचित करने वाले किसी चिन्ह विशेष की कल्पना नहीं की और इसे केवल पढ़ने या बोलने वालों के ही द्वारा निर्धारित किये जाने के लिये छोड़ दिया है जैसे:—

"एक दिन एक सलूका आवा।" यहाँ पर एक का ए न तो गुरु ही (दीर्घ) पढ़ा जाता है और न पूर्णतया ह्रस्व या लघु ही।

इसके स्थान पर यद्यपि कुछ लोग इ और य का प्रयोग करते हैं; किन्तु ऐसा करना उचित नहीं—क्योंकि इससे शब्द में रूपान्तर और विकार आ जाता है।

यहाँ पर हमें गुरु और लघु का विचार अवश्य ही स्पष्ट रूप से कर देना चाहिए क्योंकि इसी के आधार पर छन्द-शास्त्र की सारी इमारत खड़ी होती है।❀

ह्रस्व या लघु

लघु स्वर वह है जिसके उच्चारण करने में समय की उतनी मात्रा लगती है, जितनी में एक (१) कहा जा सकता है और जिसके उच्चारण करने में नाद यंत्रों का सङ्कोच ही बना रहता और उनका फैलाव नहीं होता। लघु वर्णों की इसीलिये एक मात्रा मानी गई है।

गुरु या दीर्घ

दीर्घ स्वर वे हैं जिनके उच्चारण में लघु स्वर की अपेक्षा दूने समय (समय की दुगुण मात्रा) की आवश्यकता होती है और नाद-यंत्रों का फैलाव दूना हो जाता है। इसलिए दीर्घ वर्ण दो मात्रा वाले कहे गये हैं, और दीर्घ-स्वर दो लघु-स्वरों से मिले हुए संयुक्त-स्वर कहलाते हैं।

नोटः—ध्यान रहना चाहिए कि व्यञ्जनों का उच्चारण, वे

❀ इस सम्बन्ध में सर डा० ग्रिअर्सन ने अपना मत प्रकट किया है। श्री 'रसाल' जी का मत हम परिशिष्ट भाग दे रहे हैं; क्योंकि वह हमें उपयुक्त जँचता है।

नोट—"एक मात्रा भवेद् ह्रस्वो, द्विमात्रो दीर्घ उच्यते,
त्रिमात्रो च प्लुतो ज्ञेयो, व्यञ्जनश्चार्ध मात्रकम्।
इक मात्रा को ह्रस्व है दीर्घ द्विमात्रिक जान।
प्लुत में मात्रा तीन हैं, व्यञ्जन अर्ध बखान॥"

ह्रस्व ही क्यों न हों, कम से कम ह्रस्व-स्वर की सहायता के बिना कदापि नहीं हो सकता। स्वर-हीन व्यञ्जन की सत्ता स्वीकार करते हुए इसी लिए व्यंजन को अर्ध-मात्रिक माना है।

(२) व्याकरणमें दीर्घ-स्वर के उस दीर्घ रूपको जिसके उच्चारण में ह्रस्व-वर्ण की अपेक्षा समय की तिगुनी मात्रा लगती है प्लुत माना है, और इसे सूचित करने के लिए प्लुत-वर्ण के आगे ३ का अङ्क बना दिया जाता है। किन्तु पिङ्गल-शास्त्र में इसका कोई विचार नहीं होता।

(३) पिङ्गल-शास्त्र में ह्रस्व को लघु और दीर्घ को गुरु कहते हैं और इनको सूचित करने के लिए दो प्रकार के निम्न चिन्हों का प्रयोग करते हैं:—

ह्रस्व (लघु)...............।

दीर्घ (गुरु)...............ऽ

(४) ध्यान रहना चाहिये कि ह्रस्व और दीर्घ-वर्ण अथवा व्यंजन, ह्रस्व अथवा दीर्घ स्वरों पर ही निर्भर हैं। दीर्घ-स्वर दो लघु स्वरों के संयोग से बने हुए संयुक्त स्वर भी माने गये हैं। जैसे:—

साधारण एव ह्रस्व या लघुस्वर अ, इ, उ, हैं।

संयुक्त, दीर्घ स्वर जैसे आ, ई, ऊ, अर्थात् २ अ, २ ई, २ उ, एवं

अ + अ, इ + इ, उ + ऊ,

ए = अ + ई, ऐ = अ + ए, अ + उ = ओ, अ, + ओ = औ इत्यादि हैं।

ह्रस्व स्वरों से युक्त व्यंजन तो ह्रस्व और दीर्घ-स्वरों से युक्त व्यंजन दीर्घ माने जाते हैं। ह्रस्व, दीर्घ या लघु, गुरु के लिए अन्य नियम पिङ्गल-शास्त्र के अनुसार इस प्रकार हैं—

अ—संयुक्त वर्ण के अर्थात् दो वर्णों से मिल कर बने हुए एक वर्ण के पहले का वर्ण,—चूँकि उसके उच्चारण में कुछ विशेषता एवं स्वतः दीर्घता पूर्वगत संयुक्त वर्ण के कारण आ जाती है, दीर्घ माना जाता है। जैसेः—पत्थर में प चूँकि संयुक्त वर्ण के पहिले है अतः दीर्घ माना जायेगा।

नोटः—ध्यान रहे कि संयुक्त वर्ण स्वतः दीर्घ अथवा ह्रस्व-स्वरान्त होने के कारण ही दीर्घ या ह्रस्व अथवा गुरु या लघु माना जायगा। यदि वह किसी अन्य नियम के कारण फिर दीर्घ नहीं माना गया है।

ब—अनुस्वार युक्त वर्ण भी निरन्तर दीर्घ (गुरु) माने जाते हैं। जैसे कंपित में कं दीर्घ है।

नोटः—इसका कारण यह है कि अनुस्वार अपने आगे आने वाले वर्ण के वर्ग के स्वरहीन पंचमाक्षर में रूपान्तरित हो जाता है और इस प्रकार दूसरे वर्ण को संयुक्त वर्ण बना देता है, जिससे नियम नं० अ के अनुसार उसके पूर्व का वर्ण दीर्घ या गुरु मान लिया जाता है। जैसे शंकर अथवा शङ्कर, चंचु=चञ्चु, वंदन= वन्दन इत्यादि।

टिप्पणीः—ध्यान रखना चाहिए कि कतिपय ऐसे शब्द हैं जिनमें अनुस्वार का प्रयोग न किया जाकर वर्ग के पञ्चम वर्ण का ही प्रयोग होता है; जैसेः—तन्मय, मृन्मय आदि।

स—सानुनासिक-वर्ण अर्थात् अनुस्वार के अर्ध रूप से संयुक्त वर्ण, जिनके उच्चारण में नासिका से थोड़ी सी सहायता ली जाती है, दीर्घ न माने जाकर ह्रस्व या लघु ही माने जाते हैं; जैसेः—चहुँओर, हँसना इत्यादि। सानुनासिक वर्ण यदि दीर्घ स्वन्तरा

होते हैं तो अवश्य ही दीर्घ माने जाते हैं और यह केवल दीर्घस्वर ही के कारण, न कि उनकी सानुनासिकता के कारण।

विसर्ग युक्त वर्ण भी दीर्घ माने जाते हैं, किन्तु ध्यान रहे कि हिन्दी-भाषा में विसर्ग का प्रयोग बहुत ही कम होता है; केवल कुछ ही ऐसे शब्द हैं जिनके संस्कृत एवं शुद्ध रूप में ही विसर्ग का प्रयोग देखा जाता अथवा किया जाता है। उनके भाषान्तरित रूप भी बिना विसर्ग के प्रचलित हैं; जैसे :—दुःख और दुख, दुःसह और दुसह आदि। इसलिए कहना चाहिए कि यह नियम हिन्दी भाषा में बहुत ही कम लागू होता है।

य—पदान्त वर्ण विकल्प रूप से गुरु माना जाता है अर्थात् आवश्यकतानुसार यदि पदान्तवर्ण लघु भी है तो भी दीर्घ मान लिया जायगा। जैसे—"भुवन भय मिटाने, धर्मसंरक्षणार्थ" में अन्तिम वर्ण "र्थ" पद के अन्त में होने के कारण, चूंकि नियमानुसार इसे दीर्घ होना चाहिये, दीर्घ माना जायगा। ❀

र—उन दीर्घ वर्णों को जो ह्रस्व वर्णों के समान पढ़े या बोले जाते हैं ह्रस्व तथा उन ह्रस्व वर्णों को जो कुछ दीर्घ वर्णों के समान पढ़े या बोले जाते हैं दीर्घ मानना चाहिये।

जैसे:—'अब मोंहिं भा भरोसहनुमंता।'

यहाँ "मों" दीर्घ होता हुआ भी चूंकि ह्रस्व बोला जाता है, ह्रस्व ही माना जायगा। इसी प्रकार—'अहह प्रलयकारी दुःखदायी

❀संयुक्ताद्य, विसर्गयुत, अक्षर सानुस्वार।
वर्ण पदान्त विकल्प से, दीर्घ 'रसाल' विचार॥
"संयुक्ताद्य' दीर्घं, सानुस्वारं विसर्गसंमिश्रम्।
विज्ञेयमक्षरं दीर्घं, पदान्तस्थं विकल्पेन॥"

नितान्त,' यहाँ अन्तिम 'न्त" कुछ दीर्घ सा बोला जाता है अतः दीर्घ ही माना जायेगा। प्राचीन कवियों ने (विशेषतया ब्रज-भाषा एवं अवधी-भाषा के कवियों ने) ऐसे ह्रस्व वर्णों को दीर्घ ही बना लिया है।

जैसे—'अरिहुँक अनभल कीन्ह न रामा।' यहाँ अंतिम "म" को दीर्घ "मा" कर दिया गया है। इस प्रकार दीर्घ करने के लिये प्रायः दीर्घ आकार, ईकार और ऊकार का प्रयोग देखा जाता है।

ऐसे वर्णों को जो ह्रस्व और दीर्घ दोनों के मध्यस्थ-स्वर या दबे हुए स्वर से बोले जाते हैं, लघु मानते हैं।

नोटः—संगीत में स्वरों के बढ़ाने एवं घटाने की पूर्ण स्वतंत्रता होने से ह्रस्व और दीर्घ का ऐसा सूक्ष्म एवं गूढ़ विचार नहीं होता।

आवश्यक नोट

ऐसे शब्दों के पूर्व का वर्ण जो संयुक्त वर्ण से प्रारम्भ होते हैं यदि उसके बोलने में संयुक्त वर्ण के कारण कुछ विशेषता या दीर्घता सी प्रतिभात होती है, लघु होने पर भी दीर्घ माने जाते हैं; जैसेः—जगन्नाथ! मन्नाथ! गौरीश नाथ! प्रपन्नानुकम्पिन् विपन्नार्तिहारिन्! महादेव! देवेश! देवाधिदेव! स्मरारे पुरारे! यमारे! हरेति।

नोटः—ध्यान रखना चाहिये कि उन्हीं संयुक्तवर्ण के पूर्व के वर्ण, चाहे वे किसी अन्तिम शब्द के वर्ण ही क्यों न हों, जो किसी शब्द के आदि में आते हैं और ऐसी प्रकृति के होते हैं कि वे अपने पूर्वगत शब्द के अन्तिम वर्ण के साथ शीघ्र ही बोले जाते हैं और इसलिए उसको अपने उधारण से विशेष प्रभावित करते हैं, दीर्घ

माने जाते हैं। यदि ऐसे संयुक्त वर्ण अपने पूर्ववर्ती 'वर्ण' को प्रभावित नहीं करते तो उसे वे दीर्घ भी नहीं बनाते; जैसेः—

'मुझको न यह कुछ ध्यान था,
तुम रुष्ट हो कर जा रहे।'

यहाँ पर 'कुछ' का छ यद्यपि ध्यान के ध्या संयुक्त वर्ण का पूर्ववर्ती है फिर भी चूँकि उससे प्रभावित नहीं है; दीर्घ न होकर ह्रस्व ही माना गया है। इसी प्रकार स्मृति, स्तवन, स्तुति आदि संयुक्त वर्णाद्य वर्णों के पूर्ववर्ती वर्णों के गुरुत्व एवं लघुत्व का विचार करना चाहिए।

हमारा विचार तो यह है कि स्मृति आदि शब्दों के स्मृ आदि वर्ण अपने पूर्ववर्ती वर्णों को सदा प्रभावित करते हैं और इसी-लिए उन्हें सदा दीर्घ भी बनाते हैं।

ध्यान रहे कि स्मृति आदि शब्दों का प्रयोग-छन्द की आदि में इसी प्रकार करना चाहिए कि मानों वे लघु हैं। प्रायः ऐसे शब्दों का उच्चारण अस्मृति आदि के समान करके कुछ नवयुवक प्रयोग करते हैं, उन्हें इनके प्रयोग करने में विशेष विचार कर लेना चाहिये।

ध्यान रहे कि "प्रादि" संयुक्त वर्ण दो प्रकार से बोले जाते हैं।

१ द्वित्व रूप में। जैसेः—"अप्रिय" वचन से सर्वथा है दुःख की सम्भावना" यहाँ "प्रि" का "प्र" द्वित्व रूप में बोला जाता है। अतः इसका पूर्ववर्ती वर्ण गुरु माना जायगा।

२—स्वाभाविक रूप में। जैसेः—"प्रिय अप्रिय" जनों में देखता था न भेद" यहाँ "अप्रिय" गत "प्रिय" का "प्र" अपने द्वित्व रूप में न बोला जा कर केवल स्वाभाविक रूप में बोला

जाता है और इसीलिए संयुक्तवर्ण होता हुआ भी अपने पूर्ववर्ती वर्ण को दीर्घता नहीं देता।

ध्यान रहे कि कतिपय ऐसे शब्द हैं जिनके उच्चारण में उक्त भेद करने से अर्थ में भी भेद आ जाता है। जैसेः—"अमृत" जिस समय "मृ" द्वित्व रूप में बोला जायगा तब इस शब्द का अर्थ होगा "सुधा" या "पीयूष", किन्तु जब यह द्वित्व रूप में न बोला जाकर साधारण रूप में बोला जायगा उस समय इस शब्द का अर्थ होगा "न मरा हुआ" अर्थात् जो मरा हुआ नहीं है। इस अर्थान्तर का विचार ऐसे शब्दों के प्रयोग करने में अवश्य रखना चाहिए, अन्यथा अर्थ से अनर्थ होने की सम्भावना है।

ध्यान रहे कि ऐसे वर्णों की द्वित्व रूपता में ही उनके पूर्ववर्ती वर्णों को दीर्घता मिलती है अन्यथा नहीं।

"चिन्ह और गणना"

गुरु या दीर्घ के लिये ऽ ऐसा और लघु या ह्रस्व के लिए। एक सीधी रेखा, छन्द रचना के समय गुरु और लघु के सुव्यवस्थित संगुम्फनार्थ तथा मात्रा गणना एवं प्रस्तार में सरलता और सुबोधता लाने के लिये लिखी जाती है। छन्दों के लक्षणादि में गुरु के लिये "ग" और लघु के लिये "ल" भी लिखते हैं। जैसा हम कह चुके हैं, लघु में एक मात्रा और गुरु में दो मात्रायें मात्रा-गणना के समय में गिननी चाहिये। जैसेः—

प्रभु
॥ } दो मात्रायें, अमर
।।। } तीन मात्रायें

नाथ
ऽ। } तीन मात्रायें, अनाथ
।ऽ। } चार मात्रायें

गण

तीन वर्णों के समूह को चाहे उनसे कोई शब्द बनता हो या न बनता हो, अथवा चाहे वे एक शब्द के हों या दो या अधिक शब्दों के हों, एक गण कहते हैं।

एक गण के तीन वर्णों में से आदि, मध्य, और अन्त के वर्णों की गुरुता और लघुता के विचार से अर्थात् गणगत लघु और गुरु वर्णोंके व्यवस्था, क्रम एवं स्थान के विचार से गणों के आठ रूप होते हैं।

मगण, यगण, सगण, नगण, भगण, जगण,औ तारागण, रगण। इन नामों के आद्य वर्ण लेकर निम्न सूत्र बनता है जिसके द्वारा गणों के नाम और लक्षण सरलता से याद रह सकते हैं:—

"यमाताराजभानसलगम्"

इस सूत्र के द्वारा जिस गण का रूप जानना हो उसी के इसमें दिये हुये आद्याक्षर के साथ आगे के दो और वर्ण मिलाने से अभीष्ट गण बन जायगा। जैसे:—मगण जानने के लिये सूत्र में आये हुये "मा" के साथ उसके आगे वाले ता और रा को ले कर "मातारा" बनाओ। इससे स्पष्ट है कि मगण में तीनों वर्ण अर्थात् आदि मध्य और अन्त के वर्ण गुरु या दीर्घ हैं और मगण का रूप S S S इस प्रकार है। इसी प्रकार और गणों को भी इसी सूत्र की सहायता से निकाला जा सकता है।

गण-कोष्टक

गण का नाम	रूप	उदाहरण
यगण	। ऽ ऽ	अजन्मा
मगण	ऽ ऽ ऽ	पुण्यात्मा
भगण	ऽ । ।	नारद
नगण	।।।	कमल
जगण	। ऽ ।	मराल
रगण	ऽ । ऽ	मालती
सगण	। ऽ ऽ ।।ऽ	रजनी
तगण	ऽ ऽ ।	देवेन्द्र

गणों के नाम एवं उनके रूपों के याद करने के लिए उक्त सूत्र के अतिरिक्त, दूसरा सरल-साधन यह है:—

❀आदि, मध्य, अवसान में, य, र, ता में लघु होय
भ, ज, सा में गुरु जानिये, म, न गुरु, लघु सब जोय।

अथवा

❀"आदि मध्यावसानेषु, यरता यान्ति लाघवम्।
भजसा गौरवम् यान्ति, म नौ तु गुरु लाघवौ॥"

* मगण में तीनौ गुरु, नगण में तीनों लघु;
भगण में आदि गुरु, नीकै कै प्रमानिए।
आदि लघु यगण में, मध्य गुरु जगण में;
मध्य जाके लघु होय, रगण सो जानिए॥
अन्त गुरु होय तो, सगण ताहि कहैं कवि;
तगण में अन्त लघु, यों 'रसाल' मानिए।
प्रथम के चारि शुभ, दीजिए कवित आदि;
अन्तिम के चारि तजि, अशुभ बखानिए॥

गण—देवता—फल—कोष्टक

गण	देवता	फल	शुभाशुभ
यगण	जल	आयु	शुभ
मगण	पृथ्वी	लक्ष्मी	"
भगण	चन्द्रमा	यश	"
नगण	स्वर्ग	सुख	"
जगण	सूर्य्य	रोग	अशुभ
रगण	अग्नि	दाह	"
सगण	वायु	विदेश	"
तगण	आकाश	शून्य	"

* मस्तृगुरुस्तृलघुश्च नकारो, भादि गुरुः पुनरादि लघुर्यः।
जो गुरु मध्य गतो रल मध्या, सोऽन्त गुरुर्कथितोऽन्त लघुस्तः॥

ध्यान रखना चाहिये कि उक्त गणों का विचार एवं प्रयोग विशेषतया वर्णिक-छन्दों या वृत्तियों में होता है। मात्रिक-छन्दें चूँकि उनमें मात्राओं की गणना रहती है और वर्ण संख्या पर विचार नहीं किया जाता, विशेषतया प्रस्तार और मात्राओं की व्यवस्था पर निर्भर रहती हैं।

* हमारे आचार्य्यों ने इन गणों में से चार गणों (मगण, नगण, भगण और यगण) को शुभ और शेष चार गणों (जगण, रगण, सगण और तगण) को अशुभ माना है, और छन्द की आदि में उनके प्रयोग को वर्जित किया है; किन्तु कतिपय ऐसी छन्दें या वृत्तियाँ हैं जिनके आदि में अशुभ-गणों का प्रयोग अनिवार्य्य होता है, ऐसी अवस्था में पुण्यश्लोक आचार्य्यों ने गण-दोष के परिहार भी रक्खे हैं; जिनके विषय में हम आगे कहेंगे।

उक्त आठ गणों के आठ भिन्न भिन्न देवता माने गये हैं, और इनके द्वारा शुभाशुभ फल भी यों निर्धारित किये गये हैं :—

गण तथा देवता और उनका फल

मगण को देव भूमि, लच्छिमी को फल देत;
नगण को स्वर्ग देव, सुख फल जानिये।
देव विधु भगण को, कीरति कलित देत,
यगण को जल, फल दीर्घ आयु मानिये।
जगण के नायक हैं, सूर्य्य देव, रोग करैं,
रगण को देव अग्नि, दाह फल ठानिये।
पवन है नायक सगण को, प्रवास देत,
तगण को नभ, शून्य फल यों बखानिये।

---

* मन भय ये शुभ जानिये, जरसत अशुभ विचार।
कबित आदि वे दीजिये, ये न दीजिए चारि॥

आज कल हमारे नवयुवक कवि प्रायः इस विचार से सहमत नहीं होते, किन्तु हमारा यह अनुभव है और हमने कई एक अच्छे कवियों से भी इसका अनुमोदन प्राप्त किया है कि यह सर्वथा सत्य और शुद्ध है।

जिस प्रकार गणों के शुभाशुभ होने पर विचार किया गया है, उसी प्रकार वर्णों के शुभाशुभ होने पर भी विवेचना की गई है। आचार्य्यों ने सभी स्वरों को सदा शुभ माना है; और शुभाशुभ व्यंजनों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है:—

नोटः—किसी किसी आचार्य के मत से गणागण का विचार प्रथम चरण के प्रारम्भ के छः अक्षरों में ही करना योग्य है। छः अक्षरों से दो गण बनते हैं, अस्तु किन २ दो गणों के साथ रहने से क्या फल होता है, यह हम नीचे दे रहे हैं:—

१

मगण + नगण=मित्र, ह्वै कै सिद्धि फल देत,
भगण + यगण=दास, हानि पहुँचावते।
रगण + सगण=रिपु, होत शोकप्रद फल,
तगण + जगण ये=उदास, कहलावते॥
मित्र-गण सिद्धि, दास, दास मिलि हानि करैं,
अफल उदास, शत्रु काज बिनसावते।
सुकवि 'सरस' ऐसी गण की विवेचना है,
छन्दन की आदि में सुगण कवि लावते॥

२

मित्र अरु दास मिलि विजय करावत हैं,
मित्र औ उदास आय हानि उपजावते।

———

मित्र और शत्रु गण मिलि मित्र-नाश करैं,
दास अरु मित्र, काज सिद्ध करवावते ॥
दास औ उदास मिलि पीड़ा उपजावत हैं,
दास और शत्रु गण मिलि कै हरावते ।
मिलैं जो उदास अरु मित्र, तौ है रंच फल,
आइकै उदास, दास; दुख पहुँचावते ॥

३

मिलत हैं जो पै छन्द-आदि में उदास शत्रु,
गण दुखकारी परिणाम नित जानिये ।
शत्रु और मित्र गण मिलि देत शून्य फल
शुभ और दास से प्रिया को नाश मानिये ॥
मिलत हैं शत्रु औ उदास जोपै आदि माँहि,
शंका उपजावत हैं, ऐसो ही प्रमानिये ॥
भाषत 'सरस' कवि छन्दन की आदि माँहि,
दोय दोय गणान में यों विचार आनिये ॥

मात्रिक-छन्दन माँहि बस, दोष गणागण देखु ।
वर्ण-वृत्ति में 'सरस' कवि, यह विचार नहिं लेखु ॥

नोटः—प्रत्येक चरण में गणों की गिनती प्रथम अक्षर से की जाती है । अन्त में दो या एक अक्षर यदि बच जाते हैं, वे यदि लघु हुए तो लघु और यदि गुरु हुए तो गुरु मान लिये जाते हैं ।

अशुभ वर्णों में से पांच वर्णों:—झ, ह, र, भ, और ख (झहरभख दग्धाक्षराः) को अत्यंत अशुभ और दूषित कह कर उन्हें दग्धाक्षर की संज्ञा दी गई है ।

"गणाक्षर-दोष-परिहार"

अशुभ गणों के किसी छंद के आदि में अनिवार्य्य रूप से आने पर उनके दोष एवं अशुभ-फल के परिहारार्थ ऐसा कहा गया है कि उन गणों के सम्बन्धी शब्द देवता वाची हों अथवा मङ्गल-वाची हों तथा यदि छन्द में किसी देवता या दैवी शक्ति आदि की स्तुति की गई है तो उसमें अशुभ गणों का विचार नहीं होता।

*अ:—इसी प्रकार देवता वाची अथवा मङ्गलवाची शब्दों के आदि में यदि अशुभ वर्ण भी आवें तौ भी कोई आपत्ति नहीं होती।

ब:—यदि इसके अतिरिक्त साधारण शब्दों की आदि में अशुभ या दग्धाक्षर आवें तो उनके दीर्घ होने पर अथवा यदि सम्भावना हो और किसी प्रकार की त्रुटि न आती हो तो उन्हें दीर्घ कर देने से उनके दोषों का परिहार हो जाता है।

उदाहरण

१—गण-दोष:—

"श्रियः पतिः श्रीमति शासितुम् जगत्,
जगन्निवासो वसुदेव सद्मनि।"

(माघ काव्य १ अध्याय १ श्लोक)

यहाँ प्रथम गण जगण होकर अशुभ है; क्योंकि इसका देवता सूर्य्य और फल, रोग होता है, तथापि इससे सम्बन्ध रखनेवाला शब्द सर्वमङ्गलकर देववाची है, इसलिए दोष का निवारण हो गया।

---

* देवता वाचका: शब्दाः येतु भद्रादि वाचकः,
ते सर्वे नैव निंद्यास्युः लिपितो गणितोऽपि वा॥

२:—वर्ण-दोष:—

"रामहिं चितै रहे थकि लोचन"

—गो० तुलसीदास

यहाँ रा अशुभ-वर्ण है, किन्तु वह देवतावाची शब्द में है तथा दीर्घ है इसलिये सदोष नहीं, वरन् दोषमुक्त है।

इसी प्रकार "हा ! रघुवीर देव रघुराया।"

(२) खट कंध साखा पञ्च बीस अनेक पर्ण सुमन घने।

(३) रे ! कपि पोच बोल सम्भारी ॥

(४) झूलत हिडोरे, दोऊ रङ्ग रस बोरे तहाँ—

(५) भावीवश प्रतीत उर आई।

(६) भूला जा सकता है कैसे जो कुछ देखा सुना कहीं।

उपर्युक्त सब उदाहरणों में प्रथम-वर्ण सभी दग्धाक्षर हैं किन्तु वे दोषमुक्त इसलिए हैं कि वे या तो देव-स्तवन में हैं या दीर्घ-रूप में हैं, तथा शुभगण से सम्बन्ध रखते हैं।

नोट:—ध्यान रहे कि शुभाशुभ गणों एवं दग्धाक्षरों का विचार मुक्तक-काव्य में ही विशेष रूप से करना चाहिये। प्रबन्ध-काव्य में केवल काव्य के प्रारम्भिक छन्द या छन्दों में ही इनका विचार करना उचित है और आगे नहीं। नर-काव्य में गणागण एवं शुभाशुभ वर्णों का विचार करना आवश्यक और अनिवार्य्य है। प्रबन्ध-काव्य के बीच में इनका विचार उपेक्षणीय है, जैसे:—

(अ) झपटहिं करिबल विपुल उपाई।

(ब) हमैं तुम्हैं सरवरि कस नाथा।

(स) रहहु भवन अस हृदय विचारी।

(द) भले भवन तुम बायन दीन्हा ॥ इत्यादि ॥

—रामायण

उक्त उदाहरणों के सभी प्रथम-वर्ण दग्धाक्षर हैं किन्तु वे उस प्रबन्ध-काव्य की मध्यगत छन्दों में हैं जो देवाधिदेव के सम्बन्ध में लिखी गई है। अतः ये सब वर्ण तथा इनके दोष उपेक्षणीय है।

तुक

तुकः—एक प्रकार का वह विशिष्ट अंत्यानुप्रास है, जिसमें आवृत्ति, स्वर एवं व्यञ्जन-साम्य से छन्दों के चरणों के अन्त में ही रक्खी जाती है।

अंत्यानुप्रास और तुक में यह अन्तर है कि अंत्यानुप्रास छंद के पदों और चरणगत शब्दों में आवृत्ति लाता है। किन्तु तुक चरणान्तर्गत शब्दों में ही आवृत्ति का समावेश करता है, अतः अंत्यानुप्रास का क्षेत्र अधिक व्यापक और विस्तृत है, किन्तु तुक का सङ्कीर्ण और निर्दिष्टसीमाबद्ध है।

तुक से छन्दों में एक विचित्र रोचकता और मधुरता आजाती है। हिन्दी भाषा में इसका अच्छा प्रचार एवं प्रस्तार है। हाँ संस्कृत में इस के विपरीत अतुकान्त-शैली ही का बाहुल्य है, यद्यपि हिन्दी-भाषा में भी अतुकान्त-कविता मिलती है किन्तु वह अभी दाल में नमक ही के समान है। हिन्दी-भाषा की यह अपनी एक मौलिक-शैली है, जिसका अनुकरण उर्दू काव्य ने भी किया है।

"दास" जी ने इसकी विवेचना की है, जिसको सूक्ष्म रूप में हम नीचे दे रहे हैं:—

तुक के मुख्य तीन भेद हैं:—

१:— उत्तम-तुक

२:— मध्यम-तुक

३:— निकृष्ट-तुक

अ—उत्तम-तुकः—जहाँ छन्द के चरणों में अन्त के कई वर्ण (स्वरों एवं व्यञ्जनों) की एक ही क्रम* से आवृत्ति हो। इसमें संयुक्त वर्णों का भी साम्य आपेक्षित होता है।

इसके तीन भेद हैं:—

१:— सम-सरि:—जहाँ चरणों में कई वर्णों की सम-आवृत्ति हो। जितने ही अधिक वर्णों की आवृत्ति होगी उतना ही अधिक अच्छा तुक होगा।

नोट:—ध्यान रहना चाहिये कि जब कई वर्णों की आवृत्ति होती है, तो आवृत्ति के आदि में तो समता किन्तु अन्त में पुनरुक्ति अवश्य होती है:—

२:— विषम-सरि:—जहाँ छन्द के चरणों में उन शब्दगत वर्णों की, जिनकी आवृत्ति होती है, समता नहीं होती; वरन विषमता रहती है;

३:— कष्ट-सरि:—जहाँ कठिनता से चरणान्त वर्णावृत्ति और समता दिखाई पड़े।

ब:—मध्यम-तुकः—जिसमें अधिक वर्णों की आवृत्ति न होकर केवल थोड़े ही वर्णों की आवृत्ति हो, और जिसमें संयुक्तादि वर्णों में भी साम्य न दिखाई पड़े।

इसके भी तीन भेद हैं:—

१:—असंयोग-मीलित—इसमें संयुक्त वर्णों में साम्य नहीं रहता, यद्यपि वे तुक में रहते भी हैं।

---

*ध्यान रखना चाहिये कि तुक सम्बन्धी आवृत्ति में यमक के समान वर्णों के यथाक्रम ही आने की अनिवार्यता है, यदि यथाक्रमता न होगी तो तुक शुद्ध रूप में न रहेगा, वरन् वर्णावृत्ति में रूपान्तरित हो जावेगा।

२:— स्वर-मिलित :—जहाँ तुक के केवल अंतिम स्वरों में ही साम्य हो, और व्यञ्जनों में वैषम्य रहे।

नोटः—हिन्दी में तो इस तुक की न्यूनता ही है, किन्तु उर्दू में इसकी बहुलता ही पाई जाती है।

३:—दुर्मिलः—जिसमें चरणों के केवल सब से अन्तिम वर्णों में ही साम्य रहता है, अर्थात् चरणान्त के केवल एक ही एक वर्ण मिलते हैं।

सः—निकृष्ट या अधम-तुक :—उक्त दोनों प्रकार के तुकों से यह अधिक निम्नकोटि का होता है इसमें वर्णावृत्ति या वर्ण-साम्य का कोई भी नियम नहीं रहता।

इसके भी तीन रूप होते हैं:—

१:—अमिल-सुमिल :—जहाँ छन्द के कुछ चरणों में तो तुक मिलता हो किन्तु कुछ में न मिलता हो।

२:—आदिमत्तामिला :—जिस तुक के आदि स्वर या आदि वर्णगत मात्राएँ न मिलती हों। वर्ण चाहे मिलते हों या न मिलते हों।

३:— अन्त मत्त अमिल :—जिसमें तुक के अन्तिम स्वर या मात्राएँ न मिलती हों। वर्ण चाहे मिलते हों या न मिलते हों।

इनके अतिरिक्त निम्न मुख्य भेद और किये जा सकते हैं:—

(१) सार्थक :—इसमें आवृत्ति सम्बंधी वर्ण सार्थक-शब्द बनाते हैं।

(२) निरर्थक :—जहाँ आवृत्ति सम्बंधी वर्ण निरर्थक-शब्दों के रूप में रहते हैं, और केवल तुक मिलाने के लिये ही उनका

प्रयोग होता है—अथवा जो बिना किसी दूसरे वर्ण की सहायता के सार्थक शब्द नहीं बनाते।

तुकों के दो भेद और हो सकते हैं:—

१:—वर्णावृत्ति-मूलक:—जिनके विषय में ऊपर कथन किया गया है।

२:—शब्दावृत्ति-मूलक:—जिसमें तुक में एक ही शब्द की आवृत्ति बार बार होती है।

ऐसी दशा में तुक का निर्णय शब्दावृत्ति के पूर्ववर्ती वर्णों के साम्य पर ही किया जाता है। यह शब्दावृत्ति समानार्थक और विषमार्थक दो प्रकार की हो सकती है।

अतुकान्त

छंद के चरणों के अंत में जहाँ वर्णावृत्ति या शब्दावृत्ति समता के साथ नहीं पाई जाती वहाँ अतुकान्त समझना चाहिए।

सङ्गीतात्मक-छन्दें

ऐसी छंदों का सम्बंध सङ्गीत से ही रहता है, इनमें वर्णों और मात्राओं की गणना और व्यवस्था का कोई विचार नहीं किया जाता, किन्तु गाने के राग, लय या ताल पर ही विशेष बल दिया जाता है। इसमें एक चरण अन्य चरणों की अपेक्षा छोटा और टेक के रूप में रहता है, और वही अन्य चरणों का अनुगामी या सहचर रहता भी है।

साहित्य में ऐसी छंदों के जो प्रधान कवियों के द्वारा लिखी गई हैं कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं:—

पद:—श्याम तोरी फिर फिर जाति सगाई।

दूध दही तोरे घर ही बहुत है, चोरी छोड़ कन्हाई॥

कालि्ह गई वृषभान घरै अरु ह्वाँ तेरी बात चलाई ।
सूर श्याम अवगुन लखि तोरे लौटत बाम्हन नाई ॥
श्याम..... "सूरदास"

गाइये गणपति जगबंदन ।
शङ्कर सुवन भवानी नंदन ।
मोदक प्रिय मुद मङ्गलदाता ।
विद्या-वारिध बुद्धि-विधाता ।
माँगत तुलसीदास कर जोरे ।
बसहु राम-सिय मानस मोरे ॥
—"तुलसीदास"

इसी प्रकार मीरा बाई एवं अन्य कृष्ण-भक्त कवियों के पद उदाहरणार्थ देखे जा सकते हैं । इन्हीं को भजन भी कहते हैं ।

गीत

इसमें चार पद, दो छंदों से बनाये जाते हैं—जिनमें से दो पद उल्लाला या रोला के और दो पद दोहे के रहते हैं और अंत में दस मात्रायें टेक के रूप में रहती हैं; जैसेः—

सिद्धि श्रीयुत जोग लिखी गोकुल तैं प्यारे !
राम राम बंचने श्याम ! गोपाल ! मुरारे !!
कृपा रावरी सौं इतै सब विधि सब आनंद ।
रहौ द्वारिका में सदा सकुशल हे वृजचंद ! ॥
मनावै राधिका ॥
"सरस"
(चाँद के पत्राङ्क से)

छन्द गत मुख्य दोष

छ्न्द-रचना में निम्न दोष अवश्य ही निवारणीय है:—

१:— गण-दोष और वर्ण दोष :—इनका विवेचन हम पहिले ही सूक्ष्म रूप में दे चुके हैं।

२:— यति-भङ्ग-दोष :—अ:—जहाँ पर यति अपने नियमानुसार निश्चित-स्थान पर न हो, वहाँ यति-भङ्ग-दोष माना जाता है।

ब:— जहाँ पर यति किसी शब्द को तोड़ देती हो, तथा उसको तोड़कर निरर्थकता उत्पन्न करती हो, वहाँ भी यति-भङ्ग दोष माना जाता है।

नियम है कि यति मात्राओं एवं वर्णों की संख्या के अनुसार एक निश्चित व्यवस्था एवं क्रम से एक स्थान पर होनी चाहिये और जहाँ पर यति हो वहाँ पद को भङ्ग न होना चाहिये, वरन् पद-पूर्ण रहें और शब्दों की भी पूर्ति होती रहे।

स:— जहाँ पर शब्द तो न टूटता हो किन्तु यति के द्वारा कोई संज्ञा शब्द अपनी कारकीय-विभक्ति से अलग हो जाता हो, अर्थात् कारक-सम्बंधी संज्ञा शब्द और उसकी विभक्ति यति के कारण एक दूसरे से पृथक् हो गई हों।

द:— जहाँ पर संयुक्त क्रियायें यति के कारण अनियम से टूट कर पृथक् हो गई हों। ऐसे स्थानों में यति-भङ्ग दोष होता है।

३:—गति-भङ्ग दोष :—हम प्रथम ही कह चुके हैं कि सङ्गीत से कविता का घनिष्ट सम्बन्ध है। प्राय: प्रत्येक प्रकार का छन्द गाया जा सकता है क्योंकि वर्णों और मात्राओं की विशिष्ट व्यवस्था से उसमें एक प्रकार की ध्वनि, गति या लय आ जाती

है। संगीत यद्यपि काव्य से पृथक् है तो भी कविता को संगीत से अवश्य ही सहायता लेनी पड़ती है।

छन्द में जो एक प्रकार का संगीतात्मक लय-पूर्ण पाठप्रवाह होता है उसे छन्द की गति कहते हैं।

इस गति का छन्द की शुद्धता में बहुत बड़ा भाग है, गति के बिना नियमानुसार हुये मात्राओं एवं वर्णों का सुव्यवस्थित संगुम्फन करने पर भी छन्द का जन्म नहीं हो सकता। जैसे चौपाई में सोलह मात्रायें होनी चाहिये, किन्तु सोलह मात्राओं की ही व्यवस्था से चौपाई की रचना की अभीष्ट पूर्ति नहीं हो सकती, यदि उसमें उसका विशिष्ट पाठ-प्रवाह या गति का लयपूर्ण रूप न हो। जैसे:—

जन्म जन्म मुनि यतन कराहीं।
अन्त राम कहि आवत नाहीं।

इसके स्थान पर यदि इन्हीं मात्राओं एवं वर्णों को किसी दूसरी प्रकार रख दें तो इसकी गति में इतना अन्तर पड़ जायगा कि यह चौपाई ही न रह जायगी। जैसे:—

मुनि जन्म यतन जन्म कराहीं।
अन्त कहि राम नाहीं आवत॥

जहाँ पर किसी छन्द की गति ठीक नहीं होती अथवा उसका पाठ प्रवाह छन्द की विशिष्ट निश्चित रीति से या लय के साथ नहीं होता वहाँ गति-भंग दोष माना जाता है।

ध्यान रहे कि गति-भंग दोष एक बहुत बड़ा दोष है क्योंकि इससे छन्द और की और ही हो जाती है। कह सकते हैं कि छन्द-रचना का मूल सूत्र, अथवा तत्त्व गति या पाठ-प्रवाह ही है। इसी को उपयुक्तता से लाने के लिये वर्ण, मात्रा, और उनकी गणना की

व्यवस्था एव क्रम, गुरु-लघु-विचार, तथा प्रस्तार का विस्तार किया गया है, और प्रत्येक छन्द के लिये निश्चित नियम बना दिये गये हैं। गति में बहुत थोड़े ही में परिवर्त्तन हो जाते हैं और गति-परिवर्तन से भिन्न प्रकार की नई नई छन्दों का जन्म हो जाता है। वर्णों और मात्राओं की संख्या समान रहते हुये भी गति-पार्थक्य के कारण छन्दें भिन्न हो जाती हैं।

नोटः—विराम या यति से भी गति को अच्छी सहायता मिलती है, गति को समुचित एवं सुचारु रखने के लिये ही भाषा में कभी कभी छन्दान्तर्गत दीर्घ वर्ण ह्रस्व और ह्रस्व वर्ण दीर्घ पढ़ा जाता है, किन्तु इसके लिये कोई नियम विशेष नहीं है। यह अत्यन्त आवश्यक ही नहीं वरन् अनिवार्य्य भी है कि छन्द-रचना के पूर्व छन्द की गति ख़ूब माँज ली जाय, और उसकी लय में, ख़ूब अभ्यास कर लिया जाय।

*शब्द-भंगः—जहाँ गति और यति पर कोई शब्द अनुपयुक्तता से टूट जाता है, वहाँ शब्द-भंग दोष माना जाता है।

*व्यक्तिक्रम-दोषः—जहाँ शब्दों की व्यवस्था अभीष्टार्थ प्रकाशक (परिपोषक) क्रम के साथ नहीं होती वहाँ व्यतिक्रम दोष कहा जा सकता है।

नोटः—छन्द के पढ़ने में भी छन्द की निश्चित-गति पर विशेष ध्यान रखना चाहिये और यति एवं विराम तथा अन्य उचित ठहरावों पर भी उचित समय तक ठहरना चाहिये, क्योंकि बहुधा ऐसा न करने से भी बहुत कुछ अनर्थ हो जाने की सम्भावना है। छन्द कैसा ही बुरा क्यों न हो, यदि वह अच्छे ढङ्ग से पढ़ा गया

---

* कभी कभी इसके कारण बड़े अनर्थ हो जाते हैं।

इसके कारण भी बहुधा अर्थ का अनर्थ हो जाता है।

है तो वही मनोरञ्जक और रुचिकर प्रतीत होता है, और अच्छे से अच्छा छन्द ठीक तरीक़े से न पढ़े जाने से अभीष्ट आनन्द प्रदायक नहीं सिद्ध होता ।

छन्द या वृत्ति

परिभाषा--प्रकरण

छन्द :—गद्य का वह विशेष रूप है, जिसमें सङ्गीतात्मक (गान योग्य) एक विशिष्ट गति, ताल या लय हो ; और जिसमें मात्राओं एवं वर्णों की नियंत्रित गणना के साथ विशेष-नियमों के आधार पर पद-विन्यास का संगुम्फन नियमित व्यवस्था और विधान के साथ धारावाहिकता से हो ।

नोट :—ध्यान रखना चाहिए कि छन्द में पद्यवता अनिवार्य्य है । बिना इसके वह एक प्रकार के गद्य में ही रूपान्तरित हो जावेगी ।

पद्य :—इस शब्द के व्यापक अर्थ में छन्द और वृत्ति दोनों आ जाते हैं, अस्तु जिस रचना में मात्रा, वर्ण, विराम, गति तथा चरणान्त में वर्ण एवं मात्रा साम्य के नियमों का विचार रख कर शब्द योजना की जाती है उसे पद्य या छन्द कहते हैं । इसमें व्याकरणानुसार शब्दों के क्रम में हेर फेर भी हो जाय तो दोष नहीं माना जाता । जैसे :—

कंकण-किंकिणि, नूपुर धुनि सुनि,
कहत लषण सन राम हृदय गुनि । रामायण

गद्य की यही विशिष्ट व्यवस्थित रचना पद्य है । यदि इसी को इसके मूल रूप यानी गद्य में रक्खें तो इसको इस प्रकार रूपान्तरित करना पड़ेगा और व्याकरण के वाक्य-विचार सम्बन्धी नियमों

के अनुसार इसकी व्यवस्था को बदल कर इस प्रकार रखना पड़ेगा।

राम कङ्कण,-किङ्किण,-नूपुर-धुनि सुनि, हृदय में गुनि लषण सन कहता (है)।

नोट :—ध्यान रखना चाहिए कि छन्द अपने विस्तृत एवं व्यापकार्थ में कभी कभी पद्य का पर्य्यायवाचक शब्द माना जाता है। किन्तु वस्तुतः छन्द उसी पद्य को कहना चाहिये जिसमें मात्राओं की व्यवस्था एवं उनकी गणना के क्रम का विशेष ध्यान रक्खा जाय।

वृत्ति :—वह छन्द है जिसमें मात्रागणना और उनकी व्यवस्था पर विशेष ध्यान न दिया जाकर वर्ण-गणना एवं उनके विधान और व्यवस्था पर विशेष ध्यान दिया जाय।

नोट :—छन्द का व्यापक अर्थ लेते हुए आचार्य्यों ने मात्रिक और वर्णिक नामी छन्द के दो भेदों में से द्वितीय रूप या वर्णिक छन्द को वृत्ति की सञ्ज्ञा दी है, किन्तु हमारी समझ में मात्रिक-छन्द या पद्य को छन्द और वर्णिक पद्य को वृत्ति कहना अधिक उपयुक्त होगा ; क्योंकि इस प्रकार इनके अर्थ सर्वथा निर्दिष्ट और निश्चित हो कर उक्त गड़बड़ी को दूर कर देंगे।

पाद :—प्रत्येक छन्द (पद्य) में चार मुख्य भाग होते हैं जो निर्दिष्ट एवं नियम-निश्चित विरामों से प्रथक किये जाते हैं इनको पद, पाद अथवा चरण कहते हैं।

पदों या चरणों के अनुसार छन्दों के निम्न भेद होते हैं :—

१ :—द्विपदी-छन्द :—इसके अन्तर्गत दोहा, सोरठा आदि आते हैं।

२:—चतुष्पदी-छन्द :—इसके अन्तर्गत चौपाई, कवित्त, सवैय्या, हरिगीतिका इत्यादि छन्दें आती हैं।

३:—षट पद-छन्द :—इसमें छप्पय, कुण्डलियादि आती हैं। इसी प्रकार अष्ट-पदी द्वादश-पदी, आदि भेद भी छन्दों के किये गये हैं।

यति :—जहाँ पर छन्द के पदों की गति विशेष नियमों से नियंत्रित हो कर ठहराई जाती है, वहाँ यति मानी गई है, अर्थात् चरणों के निर्दिष्टि या निश्चित गति के ठहराव (गतिस्थैर्य्य) को गति कहते हैं। इसी के दूसरे नाम विराम या विश्राम भी हैं।

नोटः—विराम एक प्रकार का चिन्ह भी होता है जिसे अंग्रेजी में कामा Comma कहते हैं। इसके मुख्य तीन भेद हैं; पद-विराम, अर्ध-विराम और पूर्ण-विराम। इनके चिन्ह यों हैं:—

, ; · या। ॥

यति या विराम पर जितनी देर में १ एक कहा जा सकता है, उतनी ही देर तक ठहरना चाहिये।

गतिः—छन्द की नियंत्रित धारावाहिकता को गति कहते हैं। इसी गति पर छन्द की संगीतात्मक मनोरञ्जकता और श्रुति की सुखद माधुरी निर्भर है।

नोटः—पदों की संख्यानुसार छन्दों के उक्त भेद जो हमने दिखाये हैं उनसे यह स्पष्ट होगा कि छन्दों में पदों या चरणों की संख्या सम रहती है; किन्तु इसके साथ यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि इनकी संख्या विषम भी होती और हो सकती है, जैसे:—पद, या एक प्रकारके गाने योग्य भजन, यथा सूरदास और तुलसी दास जी के पद तथा गीत, जैसे:—नन्द दास कृत भ्रमर गीत की विषम छन्दों में। इनमें सङ्गीत सम्बन्धी दादरा आदि के

समान एक पद टेक के रूप में होता है और वह प्रत्येक छन्द का अनुगामी या सहचर रहता है। विचारने की बात है कि सङ्गीत और कविता को मिलकर एक नवीन प्रकार की कविता या पद्य-काव्य की उत्पत्ति के लिए आचार्य्यों, एवं प्रधान कवियों ने इनकी रचना की है।

मात्राओं और वर्णों की गणना या व्यवस्था के अनुसार छन्द दो प्रकार के होते हैं:—

१:—मात्रिक-छन्द:—जिनमें मात्राओं की संख्या और उनकी व्यवस्था का ध्यान रक्खा जाता है, वर्णों की संख्या और व्यवस्था उपेक्षणीय होती है।

२:—वर्णिक-छन्द:—वे छन्दें वर्णिक कहलाती हैं जिनमें मात्राओं की संख्या पर विचार न रखते हुए (यद्यपि गुरु और लघु की व्यवस्था का उनमें सर्वत्र निरंतर ध्यान रक्खा जाता है) विशेषतया वर्ण-संख्या और व्यवस्था का विचार रक्खा जाता है।

इन दोनों प्रकार के भेदों के फिर तीन तीन उपभेद होते हैं:—

१:—सम:—जिसमें मात्राओं अथवा वर्णों की संख्या चारों चरणों में समान रहती है।

२:—अर्ध-सम:—वे छन्दें हैं, जिनके प्रथम और तृतीय, तथा द्वितीय और चतुर्थ चरणों में मात्राओं अथवा वर्णों की संख्या समान हो।

नोट:—इससे स्पष्ट है कि यह विषम संख्या वालों पदों के ही आधार पर स्थिर है। सम संख्यात्मक पद जैसे द्वितीय और चतुर्थ पद, चूँकि समान मात्राओं एवं वर्णों के रखने वाले होते हैं और विषम संख्यात्मक पद जैसे प्रथम और तृतीय भी उसी

प्रकार के (समान वर्ण या मात्रा वाले) होते हैं इसीलिए इसे अर्धसम कहते हैं।

३:—विषम:—वे छन्द जो सम और अर्ध-सम न होकर चारों पदों में वैभिन्य या वैषम्य रखती हैं।

निष्कर्ष रूप में यों कह सकते हैं:—

सब पद सम में सम रहत, विषम विषम में जान।
इन दोहुन तैं भिन्न जो, ताहि अर्ध-सम मान॥

—रसाल-पिङ्गल

सम-छन्दों के फिर दो मुख्य भेद किये गये हैं:—

१:— दण्डक   २:— साधारण

नोट:—चूँकि दण्डक और साधारण, मात्रिक और वर्णिक सम-छन्दों में अपने पृथक् पृथक् रूप एवं मात्राओं और वर्णों की संख्या एवं उनके विधान भिन्न भिन्न रखते हैं, इसलिये इनकी व्यापक परिभाषायें हम नहीं दे रहे हैं। इनके विशिष्ट लक्षण आगे देखिये।

छन्द-कोष्टक

छन्द

- मात्रिक
  - सम
    - साधारण
    - दण्डक
  - अर्ध-सम
  - विषम
- वर्णिक
  - सम
    - साधारण]
    - दण्डक]
  - अर्ध-सम
  - विषम
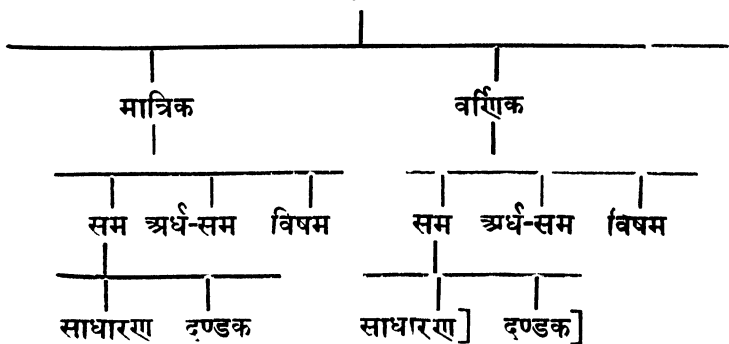
मात्रिक-सम-छन्द-प्रकरण

नोटः—प्रस्तार रीत्यानुसार छन्दों की संख्या असंख्य हो सकती है, अस्तु हम यहाँ मात्रिक-समान्तर्गत साधारण छन्दों के कुछ उदाहरण जो विशेषतया अत्यधिक रूप में प्रचलित पाये जाते हैं दे रहे हैं:—

१—चौपाई

२ १ १ २ १ २ १ १ १ २ २
ईश्वर अंश जीव अविनासी। १६ मात्रायें
२ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ २ २
चेतन अमल सकल सुख राशी॥ १६ मात्रायें
२ २ २ १ १ १ १ १ १ २ २
सो माया वश भयउ गोसाईं। १६ मात्रायें
१ १ १ २ १ २ १ १ २ २ २
बँधेउ कीट मर्कट की नाईं॥ १६ मात्रायें
"रामायण"

चौपाई:—इस छन्द के प्रत्येक चरण में १६ मात्रायें होती हैं।

नोटः—इस छन्द की रचना में गति पर विशेष ध्यान देना चाहिये। इसके चरण के अन्त में 'जगण' (।ऽ।) वा 'तगण' (ऽऽ।) कदापि न रखना चाहिये। यद्यपि ऐसा कोई नियम विशेष नहीं है परन्तु तौ भी चरणान्त में दो गुरु (ऽऽ) रखने से इस छन्द की गति अच्छी हो जाती है और पढ़ने में भी मधुर जान पड़ती है। हिन्दी-साहित्य में तुलसीदास की चौपाइयाँ बहुत ही प्रसिद्ध हैं।

२----रोला

रोलाः—इस मात्रिक-सम-छन्द में ११ और १३ मात्राओं पर विराम दे कर कुल २४ मात्रायें रखनी चाहिये, इसे काव्य छंद भी कहते हैं। किसी किसी आचार्य्य का मत है कि इस छंद के चरणांत के दो गुरु वर्ण होने चाहिये, किन्तु यह नियम सर्वत्र नहीं पाया जाता। जैसेः—

जाके प्रति पद माँहि, कला चौबिस गनि राखैं।
रोला अथवा काव्य, छंद ताकहँ कवि भाखैं॥
नियम न लघु गुरु केर, रखैं अंतै गुरु दोई।
ग्यारह पर विश्राम, किये अति उत्तम होई॥

३—हरिगीतिका

हरिगीतिकाः—इस छन्द में १६ और १२ के विराम से प्रत्येक चरण में २८ मात्राएँ होती हैं, और चरणान्त में एक लघु और एक गुरु का होना आवश्यक है। इसकी गति ठीक रखने के लिये प्रत्येक चरण की पाँचवीं, बारहवीं, उन्नीसवीं तथा छब्बीसवीं मात्रायें लघु रखना चाहिये; नहीं तो छन्द की गति बिगड़ जाती है। किसी किसी के मत से इसमें ७ सात मात्राओं पर विराम देते रहना चाहिये और १४ चौदह मात्राओं पर दो मुख्य विराम यति के लिये रखना चाहिये। इस प्रकार केवल ४ बार 'हरिगीतिका' कहने या रखने से इस छंद का एक चरण बन जाता है। जैसे—हरिगीतिका, हरिगीतिका, हरिगीतिका, हरिगीतिका।

यथाः—

ये दारिका परिचारिका करि, पालबी करुणामयी।
अपराध छमिबो बोलि पठए, बहुत हौं ढीठी दई॥

पुनि भानुकुल भूषण सकल सन,-मान विधि समधी किये ।
कहि जात नहिं विनती परस्पर, प्रेम परिपूरन हिये ॥
"तुलसी"

नोट:—इस छंद के तीसरे चरण में "सन" तक १६ मात्रा पूरी होती हैं, और "मान" शब्द कट कर उसकी मात्राओं की गिनती अंत वाली १२ मात्राओं में होती है, अर्थात 'सन' और 'मान' के बीच में विराम पड़ता है। ऐसा न होना चाहिए था। (ऐसे ही दोष को *यति-भङ्ग-दोष कहते हैं) ॥ किंतु ज्ञात होता है कि कवि ने १४ चौदह मात्राओं पर विराम यहा रख कर इस छंद के उपनियम का अनुसरण किया है।

४—तोमर

तोमर:—इस मात्रिक-सम-छन्द के प्रत्येक चरण में १२ मात्राएँ होती हैं और अन्त में एक गुरु, और लघु-वर्ण का होना आवश्यक है यथा:—

तब चले बाण कराल। फुङ्करत जनु बहु व्याल॥
कोप्यो समर श्रीराम। चल विशिष निशित निकाम॥

५—सार

सार:—१६ और १२ के विराम से इस छंद के प्रत्येक चरण में २८ मात्रायें होनी चाहिएँ। इसके चरणांत में दो गुरु-वर्ण का होना आवश्यक है। यथा:—

प्रात समय उठि जनक-नन्दिनी, त्रिभुवन-नाथ जगावैं।
उठौ नाथ! अब भोर भयो है, भूपति द्वार बुलावैं॥

---

*छन्दों के दोषों यथा:—यति-भङ्ग, गति-भङ्ग, शब्द-भङ्ग और क्रम-भङ्ग इत्यादि दोषों का विस्तृत वर्णन हम आगे देंगे।

कमल-नयन-मुख निरखि राम को, आनँद-सिन्धु समावैं।
कनक-कलस सरजू जल झारी, विप्रन दान करावैं॥

नोट :—देखिये उक्त 'हरिगीतिका' में भी २८ मात्रायें होती है, और इसमें भी उतनी ही मात्रायें है, किन्तु उनकी व्यवस्था में भेद होने से छंद की गति पूर्णतया बदल गई है और उसका दूसरा ही रूप हो गया है।

६—कुण्डल

कुण्डल:—१२ और १० के विराम से इस छन्द के प्रत्येक चरण में २२ मात्रायें होनी चाहिये। इसके चरणान्त में दो गुरुवर्णों का होना अवश्य है। यथा:—

मेरे मन राम नाम, दूसरा न कोई।
सन्तन ढिग बैठि बैठि, लोक लाज खोई॥
अब तो बात फैल गई, जानत सब कोई।
अँसुवन जल सींचि सींचि, प्रेम बेलि बोई॥

नोट:—प्रभाती कुण्डल का वह रूप है जिसके अंत में एक ही गुरु होता है, इसे उड़ियान भी कहते हैं। यथा:—

ठुमुकि चलत रामचन्द्र, बाजत पैजनियाँ।
धाय मातु गोद लेत, दशरथ की रनियाँ॥

७—रूप-माला

रूपमाला:—इस छन्द के प्रत्येक चरण में २४ मात्रायें होनी चाहिए, एवं १४ और १० मात्राओं पर विराम देना और अन्त में एक गुरु और एक लघु-वर्ण का रखना आवश्यक है। यथा:—

यज्ञ-मण्डल में हुते, रघुनाथ जू तेहि काल।
चर्म अङ्ग कुरङ्ग को, शुभ स्वर्ण की सँग बाल॥

आस पास ऋषीश शोभित, शूर सोदर साथ।
आइ भग्गुल लोग बरणौं, युद्ध की सब गाथ॥

८—त्रिभङ्गी

त्रिभङ्गी:—बत्तीस मात्राओं का त्रिभंगी छन्द होता है। १०, ८, ८ और ६ पर विराम होता है। इस छन्द की आदि में जगण विशेष रूप से वर्जित है, तथा अन्त में एक गुरु-वर्ण का होना आवश्यक है। यथा:—

परसत पद पावन, शोक नशावन,
प्रगट भई तप-पुञ्ज सही।
देखत रघुनायक, जन सुखादायक,
सम्मुख ह्वै कर, जोरि रही॥
अति प्रेम अधीरा, पुलक शरीरा,
मुख नहिँ आवै, बचन कही।
अतिशय बड़भागी, चरणन लागी,
जुगुल नयन जल-धार बही॥

९—गीतिका

गीतिका:—(१) इस छन्द में १४ और १२ के विराम से २६ मात्राएँ होती हैं और अन्त में एक लघु तथा एक दीर्घ वर्ण का होना आवश्यक है। इस छन्द की ३ री, १० वीं, १७ वीं, और २४ वीं, मात्राएँ सदा लघु रहती हैं और अन्त में रगण रखने से विशेष माधुर्य्य आ जाता है (२) इस छन्द में कभी कभी यति १२ और १४ मात्राओं में भी आ पड़ती है। उदाहरण:—

१:—पाय के नर जन्म प्यारे, कृष्ण के गुण गाइये।
पाद-पंकज चित्त में रख जन्म को फल पाइये॥

२:—राम ही की भक्ति में अपनी भलाई जानिये।

१०—चवपैया

चवपैया:—प्रत्येक चरण में १०, ८ व १२ के विराम से ३० मात्रायें होनी चाहिएँ, अन्त में एक सगण और एक गुरु का होना आवश्यक है—यथा:—

भे प्रगट कृपाला, दीन दयाला,
कौशिल्या-हितकारी।
हर्षित महतारी मुनि मन हारी,
अद्भुत रूप निहारी॥
लोचन अभिरामा, तनुघनश्यामा,
निज आयुध भुज चारी।
भूषन बनमाला, नयन विशाला,
शोभा सिंधु खरारी॥

नोट:—मात्रिक समान्तर्गत दण्डक छन्द भी होते हैं, परन्तु वे अधिक प्रचलित नहीं हैं, अतः उनके उदाहरण हम यहाँ पर नहीं दे रहे हैं।

मात्रिक अर्ध-सम-छन्दों का प्रकरण

जिस मात्रिक छन्द के प्रथम चरण की मात्रायें तीसरे चरण की मात्राओं के और दूसरे चरण की मात्रायें चौथे चरण की मात्राओं के बराबर हों उसे मात्रिक-अर्ध-सम-छन्द कहते हैं। इस प्रकार के छन्द बहुधा दो ही पंक्तियों में लिखे जाते हैं अर्थात् पहिला और दूसरा चरण एक पंक्ति में और तीसरा तथा चौथा चरण दूसरी पंक्ति में लिखते हैं। यहाँ हम कुछ अति प्रसिद्ध मात्रिक-अर्ध-सम-छन्दों के ही उदाहरण दे रहे हैं:—

१—बरवै

बरवै :—इस छन्द के विषय (अर्थात् पहिले और तीसरे) चरणों में १२ मात्रायें और सम (अर्थात् दूसरे और चौथे) चरणों में ७ मात्राएँ होती हैं और दूसरे तथा चौथे चरण के अन्त में जगण (। ऽ ।) का होना आवश्यक है। जैसे:—

कवि समाज को बिरवा, चले लगाइ।
सींचन की सुधि लीजो, मुरझि न जाइ॥

नोट :—बरवै छन्द को ध्रुव और कुरङ्ग भी कहते हैं।

२—अति बरवै

अति बरवै :—इस छन्द के विषम-पदों में १२ और सम पद में ९ मात्रायें होनी चाहिए। यथा:—

कवि समाज को बिरवा, भल चले लगाइ।
सींचन की सुधि लीजो, कहुँ मुरझि न जाइ॥

नोट:—उक्त बरवै से इसमें २ मात्रायें सम पदों में अधिक होती हैं। यह इसके नाम ही से प्रगट है।

३—दोहा

दोहा:—इस छन्द के विषम चरणों में १३ और सम चरणों में ११ मात्राएँ होती हैं। विषम-चरणों की आदि में 'जगण' (। ऽ ।) न होना ही श्रेष्ठ है, और सम-चरणों के अन्त में 'तगण' (ऽ ऽ ।) वा 'जगण' (। ऽ ।) का होना आवश्यक माना जाता है; यथा:—

अ:—मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागर सोय।
जो तन की झांई परे, श्याम हरित द्युति होय॥

ब :—अमी हलाहल मद भरे, श्वेत - श्याम - रतनार।
जियत, मरत, झुकि झुकि परत, जेहि चितवत एक बार॥

३—सोरठा

सोरठा :—इसके पहिले और तीसरे चरण में ११ और दूसरे तथा चौथे चरण में १३ मात्रायें होती हैं। अर्थात् दोहा के चरणों के विपरीत इसके चरण होते हैं। यथा :—

जिहि सुमिरत सिधि होय, गणनायक करिवर वदन।
करहु अनुग्रह सोय, बुद्धि राशि शुभ गुण सदन॥

४—उल्लाला

उल्लाला :—पहिले और तीसरे चरण में और दूसरे तथा चौथे चरण में १३ मात्रायें होती हैं। जैसे :—

हे शरण दायिनी देवि! तू, करती सब का त्राण है।
हे मातृ भूमि! संतान हम, तू, जननी, तू प्राण है॥

× × ×

त्रिपुरारि त्रिलोचन दिग बसन, बिष भोजन भव भय हरण।
कह तुलसिदास सेवत सुलभ, शिव शिव शिव शङ्कर शरण॥

(द्वितीय)

नोट :—यद्यपि इस छन्द में २८ मात्रायें भी मानते हैं तथापि प्रायः कवि इसमें २६ मात्रायें भी रखते हैं और इसमें १३, १३ मात्राओं पर यति (विराम) देते हैं। दोनों नियम ठीक हैं, किन्तु हमारी सम्मति में २८ मात्रा वाला उल्लाला-छन्द अधिक सरस सुन्दर और मनोहर होता है।

५—रुचिरा

रुचिरा :—इसके विषम-चरणों में १६ और सम-चरणों में १४ मात्रायें होती हैं और अन्त में दो गुरु-वर्ण होते हैं। जैसे :—

हरिहर भगवत सुन्दर स्वामी, सब के घट की तुम जानो।
मेरे मन की कीजे पूरी, इतनी हरि मेरी मानो॥

मात्रिक-विषम-छन्दों का प्रकरण

जो छन्द मात्रिक-सम वा मात्रिक-अर्ध-सम न हो वही मात्रिक-विषम-छन्द है, अर्थात् मात्रिक-विषम-छन्द उसे कहते हैं जिसके चारो चरणों की मात्रा-व्यवस्था अथवा नियम भिन्न भिन्न होते हैं वा जिसके सम सम और विषम विषम चरण न मिलते हों, अथवा सम सम मिलते हों, परन्तु विषम विषम न मिलते हों तथाच इसी के प्रतिकूल विषम-विषम मिलते हों। और सम-सम न मिलते हों।

नोट :—चार चरणों से कम तथा चार चरणों से अधिक चरण जिन छन्दों में पाये जायँ उन्हें विषम छन्द जानना चाहिए। ऐसे छन्दों में जो बहुत प्रचलित हैं उन्हें ही हम दे रहे हैं।

१—कुण्डलिया

कुण्डलिया :—आदि में एक दोहा, उसके पश्चात् एक रोला छन्द जोड़कर ६ पदों (चरणों) का यह छन्द बनाना चाहिए। दोहे का अन्तिम-चरण, रोला का प्रथम चरणार्द्ध होता है, और रोला के अन्तिम-चरण के कुछ अन्तिम-अक्षर वा शब्द वही होने चाहिएँ जो दोहे के आदि में हैं, और रोला के अंतिम-चरण में चौबीस मात्राएँ रहें। जैसे :—

जाकी धन धरती हरी, ताहि न लीजै सङ्ग।
जो सँग राखे ही बनै, तौ करि राखु अपङ्ग॥
तौ करि राखु अपङ्ग, फेरि फरकै सो न कीजै।
कपट रूप दिखराइ, ताहि को मन हर लीजै॥

कह 'गिरधर कविराय,' खुटक जैहै नहिं ताकी।
कोटि दिलासा, देहु, हरी धन धरती जाकी ॥

२—छप्पय

छप्पय:—इस छन्द की आदि में रोला के चार पद चौबीस चौबीस मात्राओं वाले रखकर तदुपरान्त उल्लाला के दो पद और रखना चाहिये।

नोट:—छप्पय में जो उल्लाला-छन्द रक्खा जाय उसके दूसरे और चौथे चरण के अन्त में यदि 'नगण' (।।।) रक्खा जाय तो छन्द की गति अधिक रोचक बन पड़ती है।

यथा:—

अ:—रोला को धरि प्रथम बहुरि उल्लाला राखैं।
ताको छप्पय-छन्द नाम सबही कवि भाखैं ॥
लघु गुरु नियम न कोइ, कहैं कविराई कोई।
कोई रोला-अन्त माँहि, राखैं गुरु दोई ॥
उल्लाला के विषय मँह, कोई कवि ऐसो कहँहि।
दूजे चौथे चरण में अन्त बरण, त्रय लघु रहहिं ॥

ब:—नीरव निखिल निसर्ग, तीव्र तम तोम तने थे।
निबिड़ निशीथ नितान्त, नेत्र निस्सार बने थे ॥
काला काला सघन सघन था गगन गरजता।
प्रखर प्रभञ्जन पूर्ण, वहिर्गमनार्थ बरजता ॥
अविरत होती वृष्टि थी, सृष्टि दृष्टि आती न थी।
भूरि भयानकता भरी, भूमि भलीभाती न थी ॥

× × ×

तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाये।
झुके कूल सों जल पर सन हित मनहु सुहाये ॥

किधौं मुकुर में लखत उझकि कै निज निज सोभा ।
कै प्रनवत जल जानि परम पावन फल लोभा ॥
मनु आतप बारन तीर को, सिमिट सबै छाये रहत ।
कै हरि सेवा हित नै रहे, निरखि नैन को सुख लहत ॥

नोटः—छप्पय-छन्द को षट-पदी भी कहते हैं।

वर्णिक-वृत्तियों का वर्णन

वर्णिक-वृत्तियों के ज्ञान के लिए प्रथम गणों का जान लेना अत्यावश्यक है। तीन वर्णों के समूह को गण कहते हैं। प्रस्तार से। तीन वर्ण के समूह के आठ रूप होते हैं। अस्तु ८ ही गण भी माने गये हैं, जिनके नाम, रूप और उदाहरण हल प्रथम ही बतला चुके हैं और उनके साङ्केतिक चिन्हों का भी वर्णन कर चुके हैं। अब यहाँ हम वर्णिक-सम-वृत्तियों के अन्तर्गत २६ वर्णों तक के वृत्तियों की जिन्हें वर्ण समान्तर्गत साधारण वृत्ति कहते हैं (और इससे अधिक वर्ण वाले दण्डक कहलाते हैं) बहुत अधिक प्रचलित छन्दों का है वर्णन कर रहे हैं:—

१—इन्द्रबज्रा

इन्द्रबज्राः—इस वृत्ति के प्रत्येक चरण में तगण, तगण, और जगण तथा अंत में दो गुरु अर्थात् दो 'तगण', एक 'जगण' और अन्त में दो गुरु मिलकर ११ अक्षर होते हैं:—

संसार है एक अरण्य भारी,
हुए जहाँ हैं हम मार्ग चारी।
जो कर्म-रूपी न कुठार होगा,
तौ कौन निष्कण्टक पार होगा॥

२—उपेन्द्रवज्रा

उपेन्द्रवज्रा :—इस वृत्ति के प्रत्येक चरण में, जगण, तगण, और जगण तथा अन्त में दो गुरु होते हैं। इसमें ५ पाँच और ६ छः अक्षरों पर विराम होना चाहिए। यथाः—

बड़ा कि छोटा, कुछ काम कीजै।
परन्तु पूर्वापर सोच लीजै ॥
बिना बिचारे, यदि काम होगा।
कभी न अच्छा, परिणाम होगा ॥

३—तोटक

तोटक :—इस वृत्ति में चार 'सगण' मिलकर प्रत्येक चरण में १२ अक्षर होते हैं। यथा—

जय राम सदा सुख-धाम हरे ! ।
रघुनायक सायक-चाप धरे ! ।
भव-वारण-दारण सिंह प्रभो ! ।
गुण-सागर, नागर, नाथ विभो ! ।

४—भुजङ्ग प्रयात

भुजङ्ग प्रयात—इस वृत्ति के प्रत्येक चरण में चार 'यगण' मिलकर कुल १२ वर्ण होते हैं; जैसे—

जहाँ कञ्ज के कुञ्ज की मञ्जुता थी।
लता पत्रिता पुष्पिता गुञ्जिता थी ॥
जहाँ थे हरे कुञ्ज के पुञ्ज प्यारे।
जहाँ कंज थे भृङ्ग की गुञ्ज वारे ॥

नोट—चार बार 'भुजङ्ग प्रयातं' कहने ही से यह छंद बद जाती है। यथाः—भुजङ्गप्रयातं, भुजङ्गप्रयातं, भुजङ्ग प्रयातं, भुजङ्गप्रयातम्।

५--वंशस्थ

वंशस्थ :—यह वृत्ति जगण, 'तगण' 'जगण' और 'रगण' से मिल कर बनती है—जैसे:—

मुकुन्द चाहे यदुवंश के बने।
रहें सदा या वह गोप वंश के ॥
न तो सकेंगे ब्रज-भूमि भूलि वे।
न भूल देगी ब्रज-मेदिनी उन्हें ॥

६--सुन्दरी

सुन्दरी—इस वृत्ति में एक नगण, दो भगण और एक रगण होता है; जैसे:—

इतर पापफलानि यदृच्छया,
वितरतानि सहे चतुरानन।
अरसिकेपु कवित्त-निवेदनम्,
शिरसि मालिख मा लिख मा लिख ॥

या:—

अपर पाप फलादि यथेच्छ तू,
बितर दे, सहलूं, चतुरानन।
अरसिक प्रति पाठन काव्यका,
न विधि में लिख तू लिख तू विधि ॥

७--बसन्ततिलका

बसन्ततिलका—इस वृत्ति के प्रत्येक चरण में त, भ, ज, ज, और दो गुरु अर्थात् एक तगण, एक भगण, दो जगण और अन्त में दो गुरु मिल कर १४ वर्ण होते हैं; जैसे:—

कुञ्जें वही, थल वही; यमुना वही है।
बेलें वही, वन वही, विटपी वही है ॥

हैं पुष्प पल्लव वही व्रज भी वही है।
ये किन्तु श्याम बिन हैं न वही जनाते॥

८—मालिनी

मालिनी—इस वृति के प्रत्येक चरण में दो नगण, एक मगण और दो यगण (न, न, म, य, य,) और आठ और सात अक्षरों पर विराम होता है। जैसेः—

प्रिय वर हमको क्यों, त्यागते जा रहे हो।
प्रणय गति बढ़ा के, भागते जा रहे हो॥
इमि उचित नहीं है, त्यागना प्रेमियों को।
अहह! निठुरता यों, धारना नेमियों को॥
नोटः—न, न, म, य, य, मिला के, मालिनी को बनाओ।
—'रसाल-पिंगल'

९—द्रुतविलम्बित

द्रुतविलम्बित :—इस वृति के प्रत्येक चरण में न, भ, भ, र अर्थात् एक नगण, दो भगण और एक रगण होता है; जैसे:—

कलित-कानन-किंशुक-कुञ्ज हैं॥
किशलयाकुल पादप-पुञ्ज हैं॥
ललित लोल लता लहरा रही।
सुभगता सुखदा छहरा रही॥

१०—शार्दूल विक्रीडित

शार्दूल विक्रीडित:—इस वृत्ति के प्रत्येक चरण में (भ, स, ज, स, त, त, ग) अर्थात् एक भगण, दो सगण, एक जगण, दो तगण और एक गुरु तथा १२ और ७ अक्षरों पर विराम होना चाहिये; जैसे:—

जाती प्रेम ! न जाति पाँति तुझसे, पूछी किसी की कहीं ।
तेरे सम्मुख रङ्क और नृप में, है भेद होता नहीं ॥
दोनों ही, वन और गेह, जग में, हैं तुल्य तेरे लिये ।
ऊँचे मन्दिर से कुटी तक सभी, हैं चाह तेरी किये ॥

नोट—बाइस (२२) वर्णों से लेकर छब्बीस (२६) वर्णों तक की वृत्तियों में से कई एक वृत्तियाँ 'सवैय्या' के नाम से प्रख्यात हो गई हैं जिन्हें हम आगे चल कर दे रहे हैं ।

सवैय्यों में बहुधा गुरु लघु का क्रम ठीक न मिलने से विद्यार्थियों को भ्रम हो जाता है । अतएव स्मरण रखना चाहिए कि वर्णों का गुरुत्व एवं लघुत्व केवल उच्चारण पर ही निर्भर है, लिखावट पर नहीं । लिखावट बदल देने से शब्द अशुद्ध हो जा सकता है अतः अर्थ का अनर्थ हो जाना भी सम्भव है, अतः लिखावट न बदल कर उच्चारण के अनुसार ही इष्ट गण मानना चाहिए ।

सवैय्यों और कवित्तों के तुकान्त अवश्य मिलने चाहिए, अर्थात् चारों चरणों के अन्त्याक्षर एक से ही होने चाहिए ।

१—मत्तगयन्द

मत्तगयन्द :—सात भगण और अन्त में दो गुरु वर्णों का मत्तगयन्द नामक सवैया-छन्द होता है; जैसेः—

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर को तजि डारौं ।
आठहु सिद्धि नवो निधि को सुख नन्द की गाय चराय बिसारौं ॥
नैनन सों 'रसखान' कबै ब्रज के बन-बाग-तड़ाग निहारौं ।
कोटिन लै कलधौत के धाम करील के कुञ्जन ऊपर वारौं ॥

२—दुर्मिल

दुर्मिल—आठ (८) सगण का दुर्मिल सवैया होता है, जैसे—

सब सों करि नेह भजौ रघुनन्दन राजत हीरक माल हिये।
नव नील बधू कल पीत झगा झलकैं अलकैं घुँघरारि लिये॥
अरविन्द समान सुरूप मरन्द अनन्दित लोचन भृङ्ग पिये।
हिय में न बस्यो अस दुर्मिल बालक तौ जग में फल कौन जिये॥

नोटः—सवैया छन्दों के और भी कई भेद हैं; यथाः—

आठ भगण की किरीट, तथा आठ सगण और एक गुरु की सुन्दरी (द्वितीय) होती है। इनके अतिरिक्त सात भगण और अन्त में गुरु और लघु की 'चकोर', सात जगण और अन्त में लघु और गुरु की 'सुमुखी', सात जगण और अन्त में यगण की 'वाम', आठ सगण और एक लघु की "अरविन्द" आठ जगण और एक लघु की 'लवंगलता', आठ भगण की 'सुख' और आठ जगण की 'मुक्तहरा' सवैया छंद और भी होती है।

वर्णिक समान्तर्गत दण्डक-प्रकरण

जिस पद्य के प्रत्येक चरण में वर्ण-संख्या २६ से अधिक हो उसे दण्डक वृत्ति कहते हैं। इसके भी दो भेद हैं (१) गण-वद्ध (२) मुक्तक।

गण-वद्ध-दण्डक:—वह है जिसके वर्णों की संख्या गणों के अनुसार नियमित हो।

मुक्तक :—वह दण्डक है जिसमें वर्णों की संख्या तो नियत हो, किन्तु गणों का बन्धन न हो। ऐसे मुक्तकों में से हिन्दी में "मनहरण" बहुत प्रचलित है। इसी को घनाक्षरी वा कवित्त भी कहते हैं।

नोट :—वर्णिक वृत्तियों में जो छंद अक्षरों की गिनती या "कहीं कहीं गुरु लघु के नियम" से बनाये जाते हैं वे भी मुक्तक कहलाते हैं।

१——मनहरण

मनहरण :—इस वृत्ति के प्रत्येक चरण में ३१ वर्ण होते हैं। १६ और २५ पर यति रख कर अन्त में कम से कम एक गुरु अवश्य होना चाहिए। जैसेः—

सुनिये विटप प्रभु ! पुहुप तिहारे हम,
राखिहै। हमैं तौ शोभा रावरी बढ़ाय हैं।
तजि है। हरषि कै तौ बिलग न मानैं कछू,
जहाँ जहाँ जैहैं तहाँ दूनो जस गाय हैं॥
सुरन चढ़ैंगे नर सिरन चढ़ैंगे फेरि,
सुकवि 'अनीस', हाथ हाथन विकाय हैं।
देस में रहैंगे, परदेस में रहैंगे,
काहू भेस में रहैंगे, तऊ रावरे कहाय हैं॥

नोटः—इसमें ८, ८, ८, और ७ वर्णों पर यति देने से मधुरता एवं पाठ में अच्छी सुन्दरता आ जाती है।

(छन्द-शास्त्र में गणित विचार)

स्थिरता, सत्यता और निश्चितता तीनों विज्ञान के क्षेत्र में अपनी अपनी पूर्ण महत्ता और सत्ता रखते हैं, बिना इनके कोई भी क्षेत्र हो ओत प्रोत से पूर्ण हो जायगा और परिवर्तन की प्रखर धाराओं से वह इतना उद्वेलित हो जायगा कि किसी प्रकार काम भी न चल सकेगा। यही कारण है कि प्रत्येक विज्ञान एवं शास्त्र निश्चित नियमों से नियंत्रित किया गया है।

कहा जा सकता है कि नियमों की शृङ्खला के कारण प्रत्येक विषय की विकाश-गति का अवरोध हो जाता है और वह

सीमाबद्ध तथा जड़ीकृत हो जाता है, किन्तु यदि विचार पूर्वक देखा जाय त ऐसा नहीं होता। नियमों के द्वारा नियंत्रित एवं निश्चित स्थैर्य्य तथा विकाश का प्रवाह दोनों साहचर्य-सम्बन्ध रखते हैं; और कह सकते हैं कि दोनों में अन्योन्याश्रय सम्बंध भी है। विकाश किसी भी पदार्थ का हो, एक नियमित रूप से ही चलता है, तथा विकाश की प्रगति के पर्य्यवेक्षण से नियमों की कल्पना होती है। यह बात छन्द-शास्त्र से पूर्णतया स्पष्ट है। उसमें विकाश हुआ, और अच्छा हुआ, तथा अभी और हो सकता है; और होवे ही गा, किन्तु यह सब नियमानुकूल ही हुआ है, होता है, और होगा भी। अनियमितता से विकाश तो नहीं, ह्रास एवं नाश अवश्य हो सकता या होता है।

छन्द-शास्त्र का इतिहास यह स्पष्ट बतलाता है कि इसका विकाश गुरु और लघुवर्णों के व्यवस्था एवं विधान पर जो नियमानुकूल चलते हैं, हुआ है। गुरु और लघु वर्णों को विविध प्रकार के क्रमों से व्यवस्थित करने पर अनेक प्रकार की छन्दें उत्पन्न हुई हैं।

प्रायः यह देखा जाता है कि किसी विषय को एक सुदृढ़ आधार पर आधारित करने तथा उसे एक प्रकार के प्राकृतिक एवं शाशवत-रूप से सत्य स्थैर्य्य देने के लिये उन गणित सम्बंधी स्वयं-सिद्धियों का प्रयोग किया जाता है जो परिवर्तनशील नहीं हैं, तथा जिनमें विकार की कल्पना करना मानव-मस्तिष्क से बाहर की बात है। गणितान्तर्गत संख्या सम्बन्धी योग, सङ्कलन, गुणन एवं विभाजन मूलक नियम निश्चित और सदा सत्य माने जाते हैं।

एक + एक = दो (१ + १ = २), दो गुणा दो = चार (२ × २ = ४) एवं ६ ÷ ३ = २, ७—५ = २ आदि ऐसे सिद्धान्त हैं कि इनके फलों से विपरीत फलों की कल्पना मनुष्य कर ही नहीं

सकता। कदाचित इसी के आधार पर छंद-शास्त्र में गणित का समावेश किया गया है, और उसकी सहायता से छंदों की संख्या में विकाश किया गया है तथा अभी और किया जा सकता है।

सच पूछिये तो गणित के मूल तत्वों पर ही (गणना, सङ्कलन आदि पर) छंदों की सारी अट्टालिका बनी हुई है। हम पहिले ही दिखला चुके हैं कि वर्ण एवं मात्रा-गणना तथा उनकी विशिष्ट-व्यवस्था के द्वारा ही छंदों में सङ्गीतात्मक वह लय और माधुरी आती है। जिसका होना अत्यंत आवश्यक है।

परिभाषा

प्रत्यय:—उसे कहते हैं जिससे छंद के अनेकों विभेद प्रगट होते हैं। इसके मुख्य १० भेद हैं:—

१:—सूची—मात्राओं एवं वर्णों की एक वह विशेष गणना है जो निम्न-नियम के अनुसार बनाई जाती है*। इससे यह विदित होता है कि अमुक मात्राओं एवं वर्णों से भिन्न भिन्न प्रकार के अमुकसंख्यक छंद बन सकते हैं। जैसे:—६ मात्राओं या वर्णों से बनने वाले छंदों को प्रकाशित करने वाली सूची:—

अनुक्रम संख्या	१	२	३	४	५	६
मात्रिक-सूची	१	२	३	५	८	१३
वर्णिक-सूची	२	४	८	१६	३२	६४

*नोट:—मात्रिक सूची से १ में प्रारम्भ करो फिर आगे वाले कोष्टों में उनके पहिले वाले दो कोष्टों के अंक जोड़ कर रक्खो। वर्णिक-सूची में २ से प्रारम्भ करके आगे वाले कोष्टों में उनके पूर्ववर्ती कोष्ट के अङ्क का दूना अङ्क प्राप्त करके लिखो। इस प्रकार निश्चित संख्या में बनाये गये कोष्टों की पूर्ति करो। यही सूची का अभीष्ट रूप होगा।

अस्तु, इससे स्पष्ट है कि ६ मात्राओं से भिन्न भिन्न प्रकार के १३ मात्रिक-छन्द बन सकते हैं। इसी प्रकार ६ वर्णों से भिन्न भिन्न प्रकार के ६४ वर्णिक-छन्द (वृत्तियां) बन सकते हैं, इसी प्रकार और भी जानो।

२—"प्रस्तार"

इसका विषय बहुत आवश्यक है, क्योंकि इसीके आधार पर वर्णिक एवं मात्रिक-गणों की कल्पना हुई है। इसमें गुरु और लघु के विपर्य्यय से निश्चित-वर्णों एवं मात्राओं की संख्या वाले छन्द के रूप पृथक् पृथक् हो जाते हैं। यह सब प्रकार लघु और गुरु की ही व्यवस्था पर निर्भर है और उन्हीं के अनुक्रम को प्रदर्शित करता है। इससे छन्द के शब्द-सङ्गठन में सरलता होती है; जैसे यदि छन्द में दो मात्रायें (कहीं पर) रखनी हैं, तो वे दो लघु वर्णों या एक दीर्घ वर्ण के द्वारा रक्खी जा सकती है; जैसे:— 'सम' और 'सों' इन दोनों शब्दों की मात्रा-संख्या में तो साम्य है, किन्तु वर्ण संख्या में नहीं। एक में केवल दो लघु वर्ण हैं और दूसरे में केवल एक ही दीर्घ वर्ण है। इसलिए जहाँ पर इनमें से कोई एक न बैठता होगा, वहाँ यदि छन्द-मात्रिक है, दूसरा रक्खा जा सकता है।

हमारी समझ में इसी ही के आधार पर एवं इसी ही के कारण एकार्थ वाची और अनेकार्थ वाची शब्दों की कल्पना की गई है। विस्तार के भय से इसे हम यहाँ नहीं समझाना चाहते।

किसी नियत मात्राओं वाले छन्द के सब रूपों को गुरु और लघु के विपर्ययानुसार बिना उन सब छंदों के उदाहरणों के बतलाना मात्रा-प्रस्तार का काम है। इसी प्रकार निश्चित-वर्णों की संख्या वाले छंदों के रूपों की संख्या बतलाना वर्ण-प्रस्तार का काम है।

वर्ण-प्रस्तार की रीति :—जितने वर्णों का प्रस्तार बनाना हो अथवा उनके फैलाव से छंदों का निरूपण करना हो, उतने ही गुरु-चिन्ह एक पंक्ति में लिख लो, यह प्रथम रूप होगा। इसके पश्चात उसके नीचे सब से बाम भाग गुरु चिन्ह के नीचे लघु-चिन्ह लिखो और शेष चिन्ह ज्यों के त्यों उतार लो, यह दूसरा रूप होगा। फिर यही क्रिया बराबर करते चले जाओ और जब एक पंक्ति में सभी चिन्ह लघु आ जायें तब प्रस्तार को पूरा समझ लो।

उदाहरण :— ऽ ऽ ऽ——प्रथम रूप
। ऽ ऽ——द्वितीय रूप
। । ऽ——तृतीय रूप
। । ।——चतुर्थ रूप

नोट :—ध्यान रहे कि वर्णिक-प्रस्तार में सब से पहिला भेद दीर्घ वर्णों से और मात्रिक प्रस्तार में यदि वह सम-कल अथवा सममात्रा-संबंधी है, तो प्रथम भेद सभी दीर्घ चिन्हों से, और यदि विषम-कल या मात्रा-संबंधी है तो लघु चिन्हों से प्रारम्भ होगा।

उक्त प्रस्तार के द्वितीय रूप से दूसरी रीति के अनुसार प्रस्तार को और बढ़ाने के लिये यों चलना चाहिये। सब से बायें गुरु चिन्ह के नीचे लघु चिन्ह लिख कर उसके दाहिनी ओर सब के सब चिन्ह ज्यों के त्यों लिख लो और उसके बाम ओर सब गुरु चिन्ह लिख कर पंक्ति पूरी करो, किन्तु वर्णों की संख्या जितनी निश्चित की गई है चिन्ह उससे अधिक न बढ़ने पावें।

उदाहरण :— । ऽ ऽ——प्रथम रूप
ऽ । ऽ——द्वितीय रूप
ऽ ऽ ।——तृतीय रूप
। ऽ ।——चतुर्थ रूप

नोट :—मात्रा के स्थान पर कल शब्द का भी प्रयोग होता है।

नोटः— उक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि गणों का जन्म (तीन वर्णों को मिलाकर एक गण कहते हैं) प्रस्तार से इसी प्रकार हुआ है। उदाहरणार्थ हम चार और पाँच वर्णों के प्रस्तार और दिखलाते हैं, और आशा रखते हैं कि इससे प्रस्तार-रचना की विधि स्पष्ट हो जायगी।

चार वर्णों का प्रस्तार

१:—	ऽ ऽ ऽ ऽ	९:—	ऽ ऽ ऽ ।
२:—	। ऽ ऽ ऽ	१०:—	। ऽ ऽ ।
३:—	ऽ । ऽ ऽ	११:—	ऽ । ऽ ।
४:—	। । ऽ ऽ	१२:—	। । ऽ ।
५:—	ऽ ऽ । ऽ	१३:—	ऽ ऽ । ।
६:—	। ऽ । ऽ	१४:—	। ऽ । ।
७:—	ऽ । । ऽ	१५:—	ऽ । । ।
८:—	। । । ऽ	१६:—	। । । ।

पाँच वर्णों का प्रस्तार

१:—	ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ	१२:—	। । ऽ । ऽ	२३:—	ऽ । । ऽ ।
२:—	। ऽ ऽ ऽ ऽ	१३:—	ऽ ऽ । । ऽ	२४:—	। । । ऽ ।
३:—	ऽ । ऽ ऽ ऽ	१४:—	। ऽ । । ऽ	२५:—	ऽ ऽ ऽ । ।
४:—	। । ऽ ऽ ऽ	१५:—	ऽ । । । ऽ	२६:—	। ऽ ऽ । ।
५:—	ऽ ऽ । ऽ ऽ	१६:—	। । । । ऽ	२७:—	ऽ । ऽ । ।
६:—	। ऽ । ऽ ऽ	१७:—	ऽ ऽ ऽ ऽ ।	२८:—	। । ऽ । ।
७:—	ऽ । । ऽ ऽ	१८:—	। ऽ ऽ ऽ ।	२९:—	ऽ ऽ । । ।
८:—	। । । ऽ ऽ	१९:—	ऽ । ऽ ऽ ।	३०:—	। ऽ । । ।
९:—	ऽ ऽ ऽ । ऽ	२०:—	। । ऽ ऽ ।	३१:—	ऽ । । । ।
१०:—	। ऽ ऽ । ऽ	२१:—	ऽ ऽ । ऽ ।	३२:—	। । । । ।
११:—	ऽ । ऽ । ऽ	२२:—	। ऽ । ऽ ।		

मात्रिक-प्रस्तार

मात्रायें गुरु और लघु होती हैं, यह पहिले ही कहा जा चुका है (।, ऽ इन चिन्हों के भी विषय में लिखा जा चुका है) अस्तु, अब यहाँ इन्हीं के आधार पर आधारित रहने वाले प्रस्तार के विषय में हम सूक्ष्म और सरल रूप से कहेंगे, यद्यपि यह विषय बहुत विस्तृत, गहन एवं जटिल है।

मात्रा-प्रस्तार की रीति यह है कि यदि मात्राओं की संख्या सम हो तो प्रथम पंक्ति में उतने ही गुरु-चिन्ह लिखो जितनी संख्या मात्राओं की दी हुई है, किन्तु यदि संख्या विषम हो तो बाईं ओर जहाँ से अथवा जिधर से पंक्ति का प्रारम्भ होता है, सब से छोर या आदि में, लघु-चिन्ह रक्खो (क्योंकि विषम-मात्राओं में समता का विचार करते हुए एक मात्रा सदैव बच रहेगी) फिर पंक्ति में जो गुरु चिन्ह हो उसके नीचे लघु लिखकर दक्षिण की ओर के शेष सभी चिन्ह उसी प्रकार उतार लो, किन्तु ध्यान रहे कि मात्राओं की संख्या कदापि न घटने पावे। दूसरी पंक्ति में, यह स्पष्ट बात है, मात्राएँ अवश्य घटेंगी, इसलिए वाम भाग में गुरु-चिन्ह के द्वारा उसकी पूर्ति करो। यदि एक मात्रा शेष रहती हो तो आदि में लघु-चिन्ह ही रक्खो जैसेः—सात मात्राओं का प्रस्तार करना है, यह संख्या विषम है इसलिए सब से प्रथम लघु और शेष दीर्घ-चिन्ह लिखे जाँयगे, जब तक कि संख्या पूर्ण न हो जावेगी।

। (एक मात्रा) + ऽ (दो मात्रा) + ऽऽ (दो मात्राओं वाले दो चिन्ह मिला कर ४ मात्रायें) सब मिलाकर ७ मात्राएँ हुईं। सरलता के लिए यों लिखिये :—

१ :— । ऽ ऽ ऽ = ७ मात्राएँ।

२:—दूसरी पंक्ति में वाम-भाग के सब से प्रथम-गुरु-चिन्ह के नीचे उक्त रीत्यानुसार लघु चिन्ह लिख कर शेष सभी चिन्ह वैसे ही उतार लो।

२:— । S S=५ मात्राएँ।

अब यहाँ दो मात्राएँ शेष बचती हैं, इसलिए बाईं ओर सब से आदि में गुरु-चिन्ह रख कर मात्राओं की पूर्ति करो। अब तृतीय पंक्ति लिखते समय वाम-भाग के सब से आदि वाले गुरु-चिन्ह के नीचे उक्त रीत्यानुसार लघु-चिन्ह लिखो और शेष चिन्हों को ज्यों का त्यों ही उतार लो; जैसे:—

२:— S । S S

३:— । । S S

यहाँ तृतीय रूप में एक मात्रा की कमी पड़ती है, इसलिए रीत्यानुसार बाईं ओर सब से आदि में एक लघु-चिन्ह और लिख दो जैसे:—

३:— । । । S S=७ मात्रायें।

इसी प्रकार बराबर उस समय तक प्रस्तार करो जब तक सब चिन्ह लघु न हो जायें। ऐसी अवस्था में प्रस्तार की पूर्ति समझो जैसे:—

७ मात्राओं का प्रस्तार

१:— । S S ।
२:— S । S S
३:— । । । S S
४:— S S । S
५:— । । S । S
६:— । । S । S
७:— S । । । S
८:— । । । । । S
९:— S S S ।
१०:— । । S S ।
११:— । S । S ।
१२:— S । S ।
१३:— । । । । S ।
१४:— । S S । ।
१५:— S । S । ।
१६:— । । । S । ।
१७:— S S । । ।
१८— । । S । । ।
१९:— । S । । । ।
२०:— S । । । । ।
२१:— । । । । । । ।

सम-मात्राओं का प्रस्तार, जैसा हम ऊपर रीति के प्रथम-भाग में दिखला चुके हैं, करना चाहिए। जैसे यदि चार मात्राओं का प्रस्तार करना है तो सब से प्रथम-पंक्ति में दो गुरु-चिन्ह लिखो (दोनों गुरु-चिन्हों से चार मात्राओं की पूर्ति होती है) द्वितीय-पंक्ति के लिए बाईं ओर के सब से प्रथम गुरु चिन्ह के नीचे लघु चिन्ह लिख कर शेष-चिन्हों को वैसे ही उतार लो। ऐसा करने पर एक मात्रा की न्यूनता होगी। इसलिये सब से आदि में एक मात्रा सूचक एक लघु-चिन्ह रख दो, तो द्वितीय रूप यों होगा— ।। S । इसी प्रकार उक्त रीत्यानुसार आगे और क्रिया करो—तब चार मात्राओं का प्रस्तार यों बनेगा।

चार मात्राओं का प्रस्तार

(१)	S S	(२)	। । S	(३)	। S ।
(४)	। । S	(५)	। । । ।		

मात्रा-प्रस्तार में नष्ट की रीति

प्रश्न अब इस प्रकार के भी उठ सकते हैं कि अमुक मात्राओं के प्रस्तार का अमुक रूप क्या होगा? इसके लिए निम्न रीति के अनुसार क्रिया करनी चाहिये।

जितनी मात्राओं के प्रस्तार का कोई रूप पूछा जाये उतने ही लघु-चिन्ह एक पंक्ति में लिख लो (यही उन मात्राओं के प्रस्तार का अन्तिम रूप होगा) अब सूची की सहायता से नियत मात्राओं के प्रस्तार की संख्या निश्चित करो और लघु वर्णों के नीचे वही सूची बना लो, अब प्रस्तार का जो रूप पूछा गया है उस संख्या को सब से अन्तिम संख्या में घटाओ और जो कुछ बचे उसमें अन्तिम संख्या की पूर्ववर्ती संख्या जो घट सकती हो घटाओ,

यदि कोई संख्या न घट सकती हो तो उसे छोड़कर उसकी पूर्व-वर्ती अन्य संख्या लो। घटाने के पश्चात् शेष रही संख्या में ही पूर्ववर्ती संख्या घटाना चाहिये। जब घटाते घटाते शून्य बचे तब इस क्रिया को बन्द कर देना चाहिये और यह देखना चाहिए कि कौन कौन से अङ्क घटे हैं। यह ज्ञात होने पर उन्हीं अंकों के ऊपर प्रथम पंक्ति में (सब लघु चिन्ह वाले प्रस्तार के अन्तिम रूप में) लघु-चिन्हों को उनके दक्षिण भाग वाले लघु चिन्हों से जोड़ कर गुरु चिन्ह बना लो और शेष चिन्ह ज्यों के त्यों ही उतार लो, बस यही उत्तर का अभीष्ट रूप होगा।

प्र०:—७ मात्राओं के प्रस्तार में १३ वाँ रूप क्या है?

उत्तरः— । । । । । । । (प्रस्तार का अन्तिम रूप)

१, २, ३, ५, ८, १३, २१ (७ मात्राओं की सूची)

पश्न में १३ वाँ रूप माँगा गया है, अतः उसे (१३ को) २१ में घटाया (२१—१३=८) आठ बचा। इस आठ में से २१ के पूर्ववर्ती १३ को घटाते हैं तो वह नहीं घटता, इसलिए उसे छोड़ कर उसके पूर्ववर्ती दूसरे अंक (१३) को लेकर फिर उसी प्रकार घटाते हैं तो शून्य बचता है। बस यहीं पर यह क्रिया समाप्त होती है और हम देखते हैं कि घटने वाला अंक ८ है इसलिए उक्त दो पंक्तियों में सूची से प्राप्त प्रस्तार-संख्या-सूचक दूसरी पंक्ति के ८ के अंक के ऊपर वाले लघु चिन्ह को उसके दाहिनी ओर के लघु चिन्ह से मिलाकर एक दीर्घ चिन्ह बनाया और शेष चिन्ह ज्यों के त्यों उतार लिए, तो अभीष्ट रूप इस प्रकार मिलाः—

। । । । । । ।

१, २, ३, ५, ८, १३, २१

। । । । ऽ ।

नोट—:इसी क्रिया को नष्ट प्रस्तार की क्रिया कहते हैं।

प्रस्तार के मुख्य दो रूप, जैसा कि हम कह चुके हैं—वर्ण-प्रस्तार और मात्रा-प्रस्तार होते हैं—जिन्हें हम पहिले दिखला चुके हैं—इन दोनों प्रकार के प्रस्तारों के पाँच २ अङ्ग हैं १:—नष्ट, २:—उद्दिष्ट, ३:—मेरु, ४:—पताका, और ५:—मर्कटी। इनका वर्णन हम संक्षेप में आगे दे रहें हैं—:

वर्ण-प्रस्तार-नष्ट

नष्ट-विचार की रीतिः—यदि प्रश्न में पूछी गई संख्या सम है तो लघु और यदि विषम है तो गुरु का चिन्ह प्रथम लिखो, तत्पश्चात् उस अंक को आधा करो। किन्तु यदि वह विषम है तो उसमें एक जोड़ कर आधा करो। यदि आधा करने पर सम अंक आवे तो लघु और यदि विषम आवे तो गुरु चिन्ह लिखो। इसी प्रकार आधे किये हुए अंकों को निरन्तर ही आधा करते चले जाओ और प्राप्त अंकों की समता वा विषमता के अनुसार लघु अथवा गुरु के चिन्ह, जब तक वर्णों की सख्या पूरी न हो जाय, लिखते चले जाओ। इस क्रिया से प्राप्त रूप ही अभीष्ट रूप होगाः—जैसेः—चार वर्णों के प्रस्तार में ६ वाँ रूप निकालना है। चूँकि ६ सम है अतः प्रथम लघु चिन्ह लिखा और ६ का आधा ३ हुआ जो विषम है अतः आगे गुरु चिन्ह लिखा। फिर ३ में १ जोड़कर, (क्योंकि यह विषम अंक है) ४ का आधा किया तो प्राप्त अंक २ जो सम है, मिला, इसलिए लघु चिन्ह आगे और लिखा। अब २ का आधा १ हुआ जो विषम है इसलिए आगे गुरु चिन्ह लिखा। अब देखते हैं कि वर्णों की नियत सख्या प्राप्त हो गई, इसलिए प्राप्त रूप ही उत्तर का अभीष्ट रूप हुआ।

उत्तरः— । ऽ । ऽ

इसी प्रकार उक्त रीत्यानुसार ७ वर्णों के प्रस्तार का ५ वाँ रू यह हुआः—

ऽऽ।ऽ

नोटः—प्रस्तार के रूपों को तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्येक प्रस्तार में, वह कितने ही वर्णों का क्यों न हो, उसके विषम रूप अपने आदि के भागों में समानता रखते हैं; देखो चार वर्ण वाले प्रस्तार के ३, ५, ७, ९ और ११ वें आदि रूप। इसी प्रकार सम संख्याओं के रूपों में भी जानना चाहिए।

यह ध्यान में रखने की बात है कि वर्णिक-प्रस्तार के सभी रूपों में वर्णों की संख्या समान ही रहेगी, किन्तु मात्रिक-प्रस्तार में सदैव एवं सर्वत्र ऐसा न होगा। उसमें केवल प्रस्तार के अन्तिम रूप में ही जहाँ सभी वर्ण लघु रहेंगे, मात्राओं की नियत सख्या में ही वर्ण मिलेंगे।

उद्दिष्ट

निश्चित वर्णों के प्रस्तार में दिया हुआ रूप कौन स्थान रखता है ?, यह बतलाना ही उद्दिष्ट का रूप देना है, अर्थात् प्रस्तार का कोई रूप दे दिया गया और यह पूछा गया कि यह कितने वर्णों के प्रस्तार का कौन सा रूप है—इस प्रश्न का उत्तर देना ही उद्दिष्ट का बताना है।

उद्दिष्ट की रीतिः—दिये हुए रूप को लिखकर उसके प्रत्येक चिन्ह के नीचे (गुरु और लघु प्रत्येक चिन्ह के तले) एक से प्रारम्भ कर के द्विगुण-अंक लिखते जाओ, इस प्रकार लिख जाने पर लघु चिन्हों के नीचे वाले अंकों को जोड़कर योग में एक और जोड़ दो। इस प्रकार प्राप्त हुई संख्या अभीष्ट संख्या होगी।

उदाहरणः—ऽ।ऽ।ऽ यह रूप प्रस्तार का कौन सा भेद है ?—इसके लिए निम्न क्रिया करोः—

ऽ । ऽ । ऽ
१, २, ४, ८, १६

अब यहाँ लघु चिन्हों के नीचे दो, और आठ के अंक हैं (२ तथा ८) इनका जोड़ १० (दस) हुआ और इसमें १ मिलाने से ११ संख्या मिली। इसलिए यह पाँच-वर्णों के प्रस्तार का (क्योंकि दिये हुए रूप में पाँच ही अंक हैं) ११ वाँ भेद हुआ।

इसी नियम को याद करने के लिए निम्न पंक्तियाँ उपयोगी हैं:—

निश्चित रूप प्रथम लिख लीजै,
इकते दुगुन अंक धरि दीजै।
लघु-तल अङ्क जोड़ि पुनि जावै,
तथा योग में एक मिलावै॥
या विधि संख्या जो कुछ आवै,
ताकँह सोई रूप बतावै॥

—'रसाल'-पिङ्गल

निश्चित संख्या के वर्णों का प्रस्तार में समस्त रूपों के जानने की रीति यह है कि जितने वर्णों का प्रस्तार हो उतने ही बार दो से प्रारम्भ करके दुगुण-अंक लिखते चले जाओ। इस प्रकार जो अंक सब से अन्त में आवेगा वही प्रस्तार के भेदों की संख्या को सूचित करेगा; जैसेः—चार वर्णों के प्रस्तार के भेदों की संख्या ज्ञात करने के लिए चार बार दो से प्रारम्भ कर दुगुणांक लिखो अर्थात् दूने दूने अंक लिखो यथाः—२, ४, ८, १६, अन्तिम अंक १६ आता है इसलिए चार वर्णों के प्रस्तार के १६ ही भेद होंगे।

इसी प्रकार पाँच-वर्णों के प्रस्तार में ३२ भेद, ६ वर्णों में ६४, और ७ में १२८ इत्यादि होंगे।

वर्ण-प्रस्तार के भेदों की संख्या जानने के लिये यह नियम भी उपादेय और सरल होता है:—

जितने वर्णों के प्रस्तार के भेद जानने हों, दो के (२) उतने ही घात करो, इस प्रकार प्राप्त हुई संख्या ही अभीष्ट संख्या होगी। यथा ५ वर्णों के प्रस्तार में तद्भेद-संख्यार्थ:—२ के ५ घात किये—$२^{५}=२\times२\times२\times२\times२=३२$

इसी प्रकार ६ वर्णों के प्रस्तार-भेदार्थ—

$$२^{६}=२\times२\times२\times२\times२\times२=६४$$

मात्रा-उद्दिष्ट

मात्रा-उद्दिष्ट की रीति यह है कि दिये हुए मात्रा-प्रस्तार के रूप के बराबर समस्त संख्या वाले अङ्क इस प्रकार लिखो कि लघु-चिन्हों के केवल ऊपर और गुरु चिन्हों के ऊपर और नीचे दोनों ओर अङ्क रहें। तदुपरान्त गुरु चिन्हों के ऊपर वाले अङ्कों को जोड़ कर अन्तिमाङ्क से घटाओ, जो अंक शेष रहेगा वही अभीष्ट-अंक होगा—जैसे:—यह जानने के लिए कि । ऽ ऽ । यह रूप मात्रा-प्रस्तार का कौन सा भेद है ? पहिले इसे यों ही लिख लो, फिर १ से प्रारम्भ कर दो दो अंक जोड़ते हुए अलग समस्त अंक लिखो, जिनसे प्रस्तार की समस्त संख्या सूचित होगी ; फिर उन्हीं अंकों में से ह्रस्व के तो ऊपर ही और गुरु के ऊपर और नीचे दोनों ओर अंक लिखते जाओ। फिर गुरु चिन्हों के ऊपर के अङ्कों को जोड़, अंतिमांक से घटा कर सभी अंक प्राप्त कर लो। यथा:—

१ २ ५ १३

। ऽ ऽ ।

३ ८

२ + ५ = ७ तथा १३—७ = ६ इस लिए यह ६ वाँ रूप है ॥

मेरु

मेरुः—कहना चाहिए कि मेरु एक वह क्रिया है कि जिसकी सहायता से बिना प्रस्तार का प्रस्तार किये ही वर्ण-प्रस्तार के भेद आदि का ज्ञान हो जाता है।

मेरु बनाने की रीतिः—जितने वर्णों के प्रस्तार का मेरु बनाना हो, प्रथम उनसे एक (१) अधिक संख्या में कोष्टक बनाओ, फिर इन कोष्टकों के ऊपर इनमें १ न्यून (कम) करके दूसरे कोष्टक बनाओ, इसी भाँति एक मेरु अथवा पर्वत की आकृति में कोष्टक बनाते चले जाओ और अन्त में सब से ऊपर दो कोष्टक ही रक्खो। अब ऊपर के दोनों कोष्टकों में तथा दूसरी सब पंक्तियों के दाहिने ओर के कोष्टकों में १ के अंक लिखो, इसके उपरान्त ऊपर की ओर से अन्य खाली कोष्टकों को इस प्रकार भरो कि प्रत्येक कोष्ट के वह अंक रहे जो उसके ऊपर वाले दोनों कोष्टकों के अङ्कों का योग-फल हो। इसी प्रकार सब कोष्टकों की पूर्ति कर लो।

उदाहरणः—

पाँच वर्णों का मेरु-चित्र

अ १	इ १
उ १	ए २	ओ १
१ स	३ द	३ य	१ फ
१ ल	४ न	६ म	च ४	त १
१ ड	प ५	ब १०	ज १०	छ ५	ठ १

ऊपर के चित्र से स्पष्ट है कि चक्र के बाँयें और दाहिने ओर के उ, स, ल, और ड, और ओ, फ, त, और ठ नामक कोष्टकों में सब से ऊपर के अ और इ कोष्टकों के समान १ ही १ के अङ्क लिखे गये हैं। फिर नियमानुसार द्वितीय पंक्ति के ए कोष्टक में उसके ऊपर से अ और इ कोष्टकों के अङ्कों का योग-फल जो १+१=२ होता है रक्खा गया है। इसी प्रकार तीसरी पंक्ति के द और य नामी कोष्टों में उनके ऊपर के उ और ए कोष्टकों के अङ्कों का योग-फल जो तीन (३) होता है दिया गया है और इसी प्रकार उक्त रीत्यानुकूल क्रिया आगे भी की गई है।

इसी प्रकार किसी भी संख्या का मेरु बन सकता है। उदाहरण के लिए हम ६ वर्णों का मेरु और दे रहे हैं।

१	१
१	२	१
१	३	३	१
१	४	६	४	१
१	५	१०	१०	५	१
१	६	१५	२०	१५	६	१

इन दोनों मेरु चक्रों का मिलान करने से यह स्पष्ट हो जायगा कि ६ वर्ण वाले मेरु में ऊपर की ५ पंक्तियाँ ५ वर्णों के मेरु की पंक्तियों के समान ही हैं, इससे यह ज्ञात होता है कि न्यूनाधिक प्रस्तारों के वर्णों की भाँति, जिनमें बाईं ओर से भेद समान होते हैं, मेरु में भी ऊपर की पंक्तियाँ समान रहती हैं।

नोटः—ध्यान रखना चाहिए कि बड़ी संख्या के मेरु में उससे न्यून संख्या के सभी मेरु सम्मिलित रहते हैं। जैसे यहाँ ६ वर्णों के मेरु में ५, ४, ३ आदि वर्णों के मेरु ऊपर की पंक्तियों में सम्मिलत हैं।

इन पंक्तियों में जो अङ्क लिखे गये हैं उनसे यह ज्ञात होता है कि उतने वर्णों के प्रस्तार में इतने भेद होते हैं, और उन भेदों में चतुर्गुरु, त्रिगुरु, द्विगुरु और एक गुरु एवं सब लघु वर्ण वाले भेद कितने होते हैं; जैसेः—ऊपर के ५ वर्णों के मेरु में सब से अन्तिम या नीचे वाली पंक्ति के अङ्कों को जोड़ने से प्रस्तार के भेदों की संख्या जो ३२ है ज्ञात होती हैं। तथा यह भी ज्ञात होता है कि इन भेदों में से एक भेद में पाँचों गुरु और एक में पाँचों लघु वर्ण हैं (१ अङ्क वाले कोष्टकों से यही ज्ञात होता है) और दूसरे कोष्ट के अनुसार चार गुरु और एक लघु वाले ५ भेद होते हैं फिर तीसरे कोष्ट के अनुसार १० भेदों में ३ गुरु और २ लघु वाले भेद होते हैं। चौथे कोष्टक के अनुसार २ गुरु और ३ लघु वाले १० भेद होते हैं। पाँचवें कोष्टक के अनुसार ५ भेद ऐसे होते हैं जिनमें से प्रत्येक में एक गुरु और ४ लघु होते हैं।

नोटः - मेरु में बाईं ओर से ही सदा चलना चाहिये और सब से नीचे की पंक्ति में बाईं ओर के सब से प्रथम कोष्टक में जिसमें १ का अङ्क रहेगा, प्रस्तार के उस भेद का सूचक समझना चाहिए जिसमें सभी वर्ण जिनकी निश्चित संख्या का प्रस्तार भेद देखा जा रहा है, गुरु होंगे।

अब उस कोष्टक से दाहिनी ओर चलो और गुरु वर्णों की सख्या में एक २ की कमी और लघु वर्णों की संख्या में एक एक की वृद्धि करते जाओ, यहाँ तक कि पंक्ति के दाहिनी ओर के सब से अंतिम कोष्टक को जिसमें १ का अङ्क रहेगा, उस भेद का सूचक समझो जिसमें सभी वर्ण लघु रहेंगे।

कितने ही वर्णों के प्रस्तार में किसी निश्चित संख्या में आने वाले गुरु और लघु वर्णों की संख्या जानने के लिए बिना मेरु चक्र बनाये ही निम्न नियम को काम में लाना चाहिए। नियमः—

जितने वर्णों के मेरु की पंक्ति बनानी हो, उतनी ही सख्या तक दाहिनी ओर से प्रारम्भ करके १ से आरम्भ कर गिनती लिख जाओ और वर्णों की निश्चित संख्या तक पहुँचने के पश्चात् सब से बाईं ओर १ और लिखो। इस प्रकार प्रस्तार के निश्चित वर्णों की सख्या से तुम्हारी पंक्ति की संख्या (१) एक अधिक होगी। अब इस पंक्ति के नीचे बाईं ओर से प्रारम्भ करके (ऊपर की पंक्ति के सब से बायें अङ्क के नीचे कुछ न लिखकर) फिर वही गिनती १ से लेकर निश्चित वर्णों की संख्या तक उल्टे ढग से लिख जाओ। यथा:—

(६) छ वर्णों के प्रस्तार की पंक्ति

६ ५ ४ ३ २ १
१ २ ३ ४ ५ ६

इसके अनन्तर प्रथम-पंक्ति के सब से बाईं ओर के १ को अपनी तीसरी पंक्ति में ज्यों का त्यों ही उतार लो और फिर इस अङ्क को प्रथम-पंक्ति के दूसरे अङ्क से गुणा करो और गुणन फल में उस दूसरे अङ्क के नीचे वाले अङ्क का भाग दो। लब्धि में आये हुए अङ्क को अपनी तीसरी पंक्ति का दूसरा अङ्क समझो। अब अपनी इस तीसरी पंक्ति के दूसरे अङ्क को (जो अभी प्राप्त हुआ है) प्रथम-पंक्ति के तीसरे अङ्क से गुणा करो, और गुणनफल में उस तीसरे अङ्क के नीचे वाले अङ्क का भाग दो। लब्धाङ्क तुम्हारी तीसरी पंक्ति का दूसरा अङ्क होगा। बस अब इसी प्रकार तब तक क्रिया करते जाओ जब तक तुम्हारी तीसरी पंक्ति का सब से दाहिनी ओर का अन्तिमाङ्क एक (१) न आ जावे। इस प्रकार जो पंक्ति तैय्यार होगी मेरु की वही अभीष्ट पंक्ति होगी। यथा:—

१	६	५	४	३	२	१
	१	२	३	४	५	६
१	६	१५	२०	१५	६	१
	—	=	≡	≡	❀	०

१ × ६ + १=६ ; ६ × ५ ÷ २=१५,
(— ; =)

१५ × ४ ÷ ३=२०;२० × ३ ÷ ४=१५,१५ × २ ÷ ५=६,
(≡ ; ≡ ; ❀)

६ × १ ÷ ६=१
(०)

नोटः—इस क्रिया में यह ध्यान देने की बात है कि मध्य से फिर आगे दाहिनी ओर चलने पर बाईं ओर के अङ्कों की विलोम-क्रम के साथ पुनरावृत्ति होती है। इसलिए जब मध्यमाङ्क मिल जाय और उसके आगे चलने पर आवृत्ति प्राप्त हो तो क्रिया को बन्द कर विलोम-क्रम के साथ दाहिनी ओर के ही अङ्कों को ज्यों का त्यों उतार भी सकते हैं। इन अङ्क-युग्मों से यह भी ज्ञात होता है कि इतने इतने भेद ऐसे होंगे जिनमें गुरु और लघु की संख्या विलोम क्रम के साथ समान होगी अर्थात् दाहिनी ओर के भेदों में जितने गुरु होंगे, बाँई ओर के उतने ही भेदों में उतने ही लघु होंगे और इसी प्रकार गुरु लघु का क्रम इतने में समान रहेगा।

एकावली-मेरु

वर्ण सम्बन्धी एकावली-मेरु की विधि यों है :—जितने वर्णों का मेरु बनाना हो उतने ही कोष्टकों की पंक्ति नीचे बनाओ और उससे एक एक कम कोष्टकों की पक्तियाँ प्रत्येक पक्ति के ऊपर बनाते चले जाओ, जब सब से ऊपर दो पंक्तियाँ आ जायें तब बन्द कर दो।

ध्यान रहे कि बांई ओर के कोष्टक सब एक सीध में ही रहें। केवल दाहिनी ओर एक एक कोष्टक की कमी के कारण एक प्रकार का सोपान या सीढी सी बने, फिर अङ्क भरने वाली समस्त क्रिया उसी प्रकार करो जिस प्रकार वर्णों के साधारण मेरु में की जाती है।

खण्ड-मेरु

वर्णों की निश्चित संख्या से एक अधिक कोष्टक वाली आड़ी पंक्ति बनाओ और उसके नीचे एक कोष्टक कम वाली पंक्तियाँ खण्ड-मेरु के समान बनाते चले जाओ, यहाँ तक कि सब से नीचे एक कोष्टक ही रक्खो। ध्यान रहे कि बाईं ओर के सभी कोष्टक एक सीधी रेखा में रहें, केवल दाहिनी ओर एक एक कोष्टकों की कमी से एक सीढ़ी सी बने और तुम्हारा चित्र एकावली मेरु के चित्र से उलटा रहे।

अब सब से ऊपर की पंक्ति के प्रत्येक कोष्ट में १ का अंक लिखो और बाईं ओर की खड़ी पंक्ति में २, ३ आदि सीधी गिनती के अक अन्तिम कोष्टक तक लिख जाओ। यथा :—

६ वर्णों का खंड मेरु

१	१	१	१	१	१
२	३	४	५	६	
३	६	१०	१५		
४	१०	२०			
५	१५				
६					

अब खाली कोष्टकों में अङ्क इस प्रकार भरो, कि प्रत्येक कोष्टक के नैऋत्य अर्थात् उत्तर-पूर्वीय दिशा वाले अथवा यदि अपने कोण

को तुम अपने सामने सीधा रख लो तो दाहिनी ओर वाले कोष्टकों के अङ्कों को जोड़ कर उन कोष्टकों के मध्यगत नीचे वाले खाली कोष्टक में रख दो और यही क्रिया अन्त तक करते जाओ। अब तुम्हारे अभीष्ट उत्तर की पंक्ति वह होगी जो कर्ण रूप में चलती हुई सब से अन्त में सीढ़ी बनाने वाले कोष्टकों से बनती है। जैसे :—उपर्युक्त ६ वर्णों के प्रस्तार के चित्र में अभीष्ट उत्तर की पंक्ति सीढ़ी वाले उन कोष्टकों से बनी है जिनमें ६, १५, २०, १५, ६, और १ के अंक हैं। अब यहाँ पर यह सदा ध्यान में रखना चाहिए कि इस लब्धोत्तर में १ का अङ्क केवल एक ही बार मिलता है इसलिए १ का अङ्क सदैव उत्तर में एक बार और जोड़ देना चाहिए।

नोटः—इन सब में अङ्कादि भरने का नियम एक ही है, केवल चित्रों में अन्तर रहता है।

मात्रा-मेरु

मात्रा-मेरु से यह ज्ञात होता है कि किसी निश्चित संख्या वाले मात्रा-प्रस्तार में कितने रूप ऐसे हैं जिनमें सब लघु, सब गुरु, एक लघु, एक गुरु एवं दो, तीन, चार आदि लघु और गुरु मात्राएँ होती हैं। इसके बनाने की विधि यह है कि वर्ण-मेरु के समान कोष्टक बनाते हुए कोष्टकों की दोहरी पंक्ति बनाओ और ऊपर के एक कोष्ट से प्रारम्भ करके कोष्टकों की संख्या में एक एक की वृद्धि करते हुए दोहरे कोष्टक बनाते जाओ। सब से ऊपर के कोष्टक में १ का अङ्क लिखो, तदनंतर प्रत्येक दोहरी पंक्तियों की ऊपर वाली पंक्ति के आदि अथवा अन्त वाले कोष्टकों में अर्थात् दोहरी पंक्तियों के ऊपर वाली पंक्तियों के दाहिने और बायें ओर वाले कोष्टकों में १ के अङ्क लिखो। तत्पश्चात् खाली कोष्टकों में अङ्क इस प्रकार भरो कि उसके ऊपर के कोष्टक के

अंक को उसके नैऋत्य कोण वाले कोष्टक के अंक में जोड़कर रक्खो। इसके साथ यह भी करना चाहिये कि प्रत्येक दूसरी पंक्ति के बाईं ओर वाले आदि के कोष्टक में दो, तीन, चार, पाँच आदि के अंक लिखो। जहाँ पर किसी कोष्टक के नैऋत्य कोण वाले कोष्टक के नीचे दो कोष्टक हों वहाँ दाहिने कोष्टक से ही काम लेना चाहिये; यथाः—

| १ |
१	१
२	१
१	३	१
३	४	१
१	६	५	१
४	१०	७	१
१	१०	१५	९	१
५	२०	२२	१०	१

नोटः—

दाहिनी ओर के अन्त वाले सभी ओर के कोष्टकों में १ के अंक लिखो, और प्रत्येक दूसरी पंक्ति के बाईं ओर वाले प्रथम कोष्टकों में यथा क्रम १, २, ३, ४, आदि की गिनती के अंक लिखो।

एकावली-मात्रा-मेरु

एकावली-मात्रा-मेरु का चित्र ठीक वैसा ही बनाओ जैसा एकावली-वर्ण-मेरु का बनाया जाता है, केवल इतनी और विशेषता करो कि सब से ऊपर एक कोष्टक रक्खो और नीचे के कोष्टकों की सभी पंक्तियों को दो भागों में विभक्त करो, अर्थात् एक एक पंक्ति की दो दो पंक्तियाँ बना लो। बाईं ओर के

सभी कोष्टक एक सीधी रेखा में ही रहें, केवल दाहिनी ओर के कोष्टक एक एक की कमी के साथ एक सीढ़ी सी बनावें। इस प्रकार चित्र बनाकर बाईं ओर के सभी कोष्टकों में १ के अंक रक्खो और दाहिनी ओर के प्रत्येक युग्मगत कोष्टकों में से ऊपर वाले कोष्टकों में १ के अंक रखकर उनके नीचे वाले कोष्टकों में २, ३, ४, ५, आदि के अंक लिखो, शेष बचे हुए कोष्टकों में अंक इस प्रकार भरो कि प्रत्येक खाली कोष्टक के ऊपर वाले कोष्टक तथा उसके उत्तर-पश्चिमीय कोष्टक के अंकों को जोड़ कर खाली कोष्टक में रक्खो यथाः--

१					
१	१				
१	२				
१	३	१			
१	४	३			
१	५	६	१		
१	६	१०	४		
१	७	१५	१०	१	
१	८	२१	२०	५	
१	९	२८	३५	१५	१
१	१०	३६	५६	३५	६

नोटः—इससे यह स्पष्ट है कि यहाँ यदि ११ मात्राओं का प्रस्तार लिया जाय तो एक भेद उसमें ऐसा होगा जिसमें सभी मात्रायें लघु होंगी, १० ऐसे भेद होंगे जिनमें १ गुरु और शेष मात्रायें लघु होंगी। ३६ ऐसे भेद होंगे जिनमें २ गुरु और शेष मात्रायें लघु होंगी। इसी प्रकार दाहिनी ओर के कोष्टकों की ओर चले जाइये और गुरु मात्राओं की संख्या में १ एक एक बढ़ाते जाइये। ध्यान रहे कि सदा बाईं ओर से ही चल कर गुरु मात्राओं की

संख्या में वृद्धि और लघु मात्राओं की संख्या में न्यूनता करनी चाहिये।

खण्ड-मात्रा-मेरु

खण्ड मेरु का चित्र एकावली-मेरु के चित्र से ठीक उलटा बनाओ और सब से नीचे दो कोष्टक देकर सब पंक्तियों के दाहिनी ओर दो दो कोष्टकों की कमी रक्खो। सब से अन्त में एक कोष्टक भी रक्खा जा सकता है। बाईं ओर के कोष्टक एक सीधी रेखा में ही रहने चाहिए। अब इसमें अंक इस प्रकार भरो कि सब से ऊपरी और बाईं ओर की पंक्ति के सभी कोष्टकों में १के अंक हों, फिर खाली कोष्टकों में एक कोष्टक और उसके नैऋत्य कोण वाले कोष्टक के अंक को जोड़ कर नैऋत्य के पूर्व वाले कोष्टक में रक्खो। अब दाहिनी ओर के सब से अन्तिम कोष्टकों के अङ्क ही प्रस्तार के अभीष्ट अंक होंगे। खण्ड-मेरु से भी वही काम निकलता है जो एकावली मेरु और मेरु से निकलता है।

पताका

जैसा कि हम प्रथम कह चुके हैं, मेरु-चक्र से किसी संख्या वाले वर्ण-प्रस्तार में इतनी संख्या में द्विगुरु, त्रिगुरु एवं चतुर्गुरु के रूप होते हैं, केवल यही ज्ञात होता है; किंतु पताका-चक्र की सहायता से यह भी ज्ञात होता है कि प्रस्तार की श्रेणी में ऐसे रूप प्रथम, द्वितीय, तृतीय आदि किस स्थान में स्थित हैं। इसके बनाने की विधि यह है कि जितने वर्णों की पताका बनानी हों, उतने वर्ण वाले मेरु-चक्र की पंक्ति लिखो। उसके नीचे कोष्टकों की दूसरी पंक्ति बनाकर उनमें बाईं ओर से प्रारम्भ कर एक (१) और उससे दूनी गिनती लिखते चले जाओ। अब प्रथम पंक्ति के जिस जिस कोष्टक में जितने जितने अङ्क हैं उसके नीचे उतने

ही कोष्टक बनाओ। अब इन कोष्टकों में अंक यों भरो कि-द्वितीय आड़ी पंक्ति के प्रथम एवं द्वितीय कोष्टक के अंकों को जोड़ कर कोष्टकों की द्वितीय खड़ी पक्ति के तृतीय कोष्टक में रक्खो। तत्पश्चात् इस जोड़ से प्राप्त हुए अंक को तथा द्वितीय आड़ी पंक्ति के आगे वाले कोष्टकों के अंकों में जोड़ कर नीचे के कोष्ट में रक्खो और यही क्रिया आवश्यकतानुसार करते जाओ।

व्यापक-नियमः—

अ	१	५	१०	१०	५	१
ब	१	२	४	८	१६	३२
	स	द	य	फ	ज	ह

३	६	१२	२४
५	७	१४	२८
९	१०	१५	३०
१७	११	२०	३१

१३	२२
१८	२३
१९	२६
२१	२७
२५	२९

जो अक जोड़ने से प्राप्त हो उसे स में जोड़ो और प्राप्त अंक को द से जोड़ो फिर इसे य से जोड़ो इसी प्रकार करते जाओ जब तक कि सभी कोष्टक पूर्ण न हो जायें। एक खड़ी पंक्ति के पूरी हो जाने पर दूसरी खड़ी पंक्ति लो और उसके कोष्टक भरो, किंतु स्मरण रक्खो कि जो अंक पहिले एक बार कहीं आ चुका हैं वही अंक यदि पुनः प्राप्त हो तो उसे न रक्खो वरन् उसके

आगे वाली गिनती का अङ्क लिखो और जब कभी ऐसा हो तभी जोड़ने का क्रम ब पंक्ति की आदि अथवा स कोष्ट से प्रारम्भ होवेगा। यथा उक्त चित्र में तीसरी पंक्ति के य से चौथे कोष्टक में ९ का अङ्क प्राप्त होकर लिखा जाना चाहिये था किन्तु यह अङ्क द्वितीय पंक्ति के चौथे कोष्टक में आ चुका है, अतः इसके आगे वाला अङ्क १० वहाँ लिखा गया है और तत्पश्चात् पाँचवे कोष्टक में क्रिया ब पंक्ति की आदि से प्रारम्भ की गई है और १० + १ (स)=११ लिखा गया है और फिर सातवें कोष्टक में १७ का अङ्क जो पहिले आ चुका है नहीं लिखा गया, वरन् उसके आगे का अङ्क नियमानुसार १८ उसके स्थान पर दिया गया है, और उसके नीचे क्रिया फिर ब पंक्ति के स कोष्टक से प्रारम्भ हुई है और १८+१=१९ की संख्या दी गई है। इसी प्रकार और सभी कोष्टकों के विषय में भी जानना चाहिये।

नोटः—इस चक्र के देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि पाँच वर्णों के प्रस्तार में त्रिगुरु वाले १० रूप, चौथे, ६, ७, १०, ११ वें इत्यादि स्थानों के हैं। अब नष्ट की सहायता से इनके वास्तविक रूप ।।।ऽऽ, ।।ऽ।ऽ, ।ऽ।।ऽ सरलता से बनाये जा सकते हैं।

मात्रा-पताका

इसका भी वही उपयोग है जो वर्ण-पताका का है और इसके बनाने की विधि यों हैं कि जितने मात्राओं की पताका बनानी हो उतने ही मात्राओं के मेरु की पंक्ति लिख लो, फिर उनके नीचे खड़े कोष्टक बनाओ। एक पृथक् स्थान पर प्रस्तार की समस्त संख्या को सूचित करने वाले अङ्क जिन्हें सूची कहते हैं (१, २, ३, इत्यादि) लिखो। आड़ी पंक्ति में सब से दाहिनी ओर १ का अङ्क

रहता है और यह सूचित करता है कि सभी लघु मात्रा वाला भेद १ (एक) होता है और वह सदैव अन्तिम रूप ही होता है, अतः उसके नीचे सूची का अन्तिमाङ्क ही लिखा। फिर द्वितीय पक्ति के खड़े कोष्टकों को जो एक गुरु मात्रा वाले रूपों को सूचित करते हैं इस प्रकार भरो कि सूची के अन्तिमाङ्क में से सभी अवशिष्टाङ्क एक एक करके घटाओ और यों शेष बचे अङ्कों को कोष्टकों में लिखते जाओ। त्रिगुरु सूचक कोष्टक की पंक्ति भरने के लिए अन्तिमाङ्क में से दो अङ्कों के जोड़ को घटाओ और बचे हुए अङ्कों को कोष्टकों में लिखते जाओ। इसी प्रकार त्रिगुरु सूचक पंक्ति के कोष्टकों में अन्तिमाङ्क में से तीन तीन जोड़ कर घटाओ और शेषाङ्कों को लिखते जाओ। सर्वत्र यह ध्यान रहे कि इस प्रकार क्रिया करते हुए एक बार प्राप्त हुआ अङ्क दुबारा न लिखा जायगा वरन् वह त्याग ही दिया जायगा। यथा:—

सात मात्राओं की पताका

त्रिगुरु	द्विगुरु	एक गुरु	सर्व लघु
४	१०	६	१
१	३	८	२१
२	५	१३	
४	६	१६	
९	७	१८	
	१०	१९	
	११	२७	
	१२		
	१४		
	१५		
	१७		

मात्रा-पताका की दूसरी रीति

प्रथम सूची में जहाँ पर १, २, ३, ४, ५ आदि के अङ्क हैं उन्हें नीचे से ऊपर को लिखो और फिर खण्ड मेरु के अङ्कों को विलोम क्रम से लिखो। सूची के अङ्कों के लिखने में यह ध्यान रहे कि दो दो अङ्कों के बीच में एक एक कोष्टक खाली पड़ा रहे। आवश्यकतानुसार इन अङ्कों वाले कोष्टकों के आगे दूसरे कोष्टक जोड़ दो। अब तृतीय पंक्ति के २१ में से ८, ५, ३, इत्यादि को घटा कर दूसरे कोष्टक भरो। इसी प्रकार पाँचवीं पंक्ति के आठ (८) में से ३, २, १ के अंक घटा कर बचे हुये अङ्क भरो, इसी प्रकार तृतीय पंक्ति के आठ (८) के दाहिनी ओर वाले १३, १६, इत्यादि अङ्कों में से ३, २, १ घटा कर अङ्क भरो, इसी प्रकार क्रम से चक्र की पूर्ति करो। सर्वत्र यह ध्यान रक्खो कि किसी अङ्क की पुनरुक्ति न होने पावे दुबारा आने वाले अंक सर्वत्र त्याज्य हैं।

नोटः—सम-मात्रा की पताका में द्वितीय पंक्ति के अंक १ के बराबर ही प्रथम पंक्ति का १ पड़ेगा। यथाः—

चित्र दूसरे पृष्ठ पर देखो।

——

१—विषम-रूप

सात मात्राओं की पताका

सर्व लघु	१	२१									
		१३									
एक गुरु	६	८	१३	१६	१८	१९	२०	पं ३			
		५									
द्विगुरु	३	५	६	७	१०	११	१२	१४	१५	१७	पं० ५
		२									
त्रिगुरु	४	१	२	४	९	पं० ७					

२—समरूप

आठ मात्राओं की पताका

सर्व लघु	१	३४															
		२१															
एक गुरु	७	१३	२१	२६	२९	३१	३२	३३									
द्विगुरु	१५	५	८	१०	११	१२	१६	१८	१०	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२७	२८	३०
		३															
त्रिगुरु	१०	२	३	४	६	७	९	१४	१५	१७	२२						
चतुर्गुरु	१	१															

मर्कटी

मर्कटी वह चक्र है जिसे हम प्रस्तार की तालिका कह सकते हैं, क्योंकि इसके देखने से वृत्ति-भेद, मात्रा, वर्ण, लघु और गुरु आदि की संख्याओं का समस्त व्योरा ज्ञात हो जाता है।

मर्कटी-निर्माण:—एक आयत बनाकर उसकी चौड़ाई के ६ भाग और लम्बाई के उतने भाग करो जितने वर्णों की मर्कटी बनानी है, फिर समानान्तर रेखाओं के द्वारा क्षेत्र को कोष्ठकों में विभक्त कर लो। प्रथम पंक्ति में (लम्बाई वाली) १ से प्रारम्भ कर के गिनती लिख जाओ, यह वृत्ति-सूचक-पंक्ति होगी। भेद-सूचक दूसरी पंक्ति में दो से प्रारम्भ कर दूनी दूनी गिनती लिखते जाओ। चतुर्थ पंक्ति को पहिली और दूसरी पंक्ति के कोष्ठकों के गुणनफल के अङ्कों से पूरा करो। पाँचवीं पंक्ति के कोष्ठाङ्कों को तत्पूर्व कोष्ठों के अंकों के आधे अङ्कों से भरो; यही बात छठवीं पंक्ति में भी करो। फिर चौथी और पाँचवी पक्ति के कोष्ठाङ्कों के योगफलों से तृतीय पंक्ति के कोष्टक भरो। अब जितने वर्णों के प्रस्तार के सम्बन्ध में वर्ण मात्रादि सम्बन्धी प्रश्न पूछे जाँय, प्रथम पंक्ति की उतनी ही संख्या वाली खड़ी पंक्ति के अङ्क ऊपर से नीचे की ओर चलते हुए उत्तर में बताओ।

वर्ण-मर्कटी

नोट :—इसी प्रकार जितने वर्णों की मर्कटी बनाना हो उपरोक्त नियम द्वारा बनाई जा सकती है :—

मात्रा-मर्कटी

मात्रा मर्कटी के बनाने की रीति यह है कि प्रथम एक आयत बना कर चौड़ाई के सात भाग करो और लम्बाई के उतने भाग

करो जितनी मात्राओं की मर्कटी बनानी है। समानान्तर रेखाओं से आयत के कोष्टकों में बाँट लो और लम्बाई वाली सब से प्रथम पक्ति में दाहिनी ओर से प्रारम्भ करके उलटी गिनती लिख डालो। चौड़ाई के खानों के सामने क्रमशः कला, भेद, सर्वकला, गुरु, लघु, वर्ण और पिण्ड लिख लो। अब चौड़ाई वाली दूसरी पंक्ति में (भेद की पंक्ति में) सूची के अङ्क भर दो। सर्वकला वाली तीसरी पंक्ति में पहिली और दूसरी पंक्ति के कोष्टाङ्कों के गुणनफल लिखो। गुरु वाली चौथी पंक्ति में प्रथम शून्य और फिर १ लिखकर उसके दुगुने अंक को उसके ऊपर वाले अङ्क में से घटा कर आगे वाले कोष्क में लिखो और यही क्रिया बराबर करते जाओ। चौथी पंक्ति के कोष्टाङ्कों को दूना करके तीसरी पंक्ति के कोष्टाङ्कों में से घटाओ, यह पाँचवी पंक्ति होगी। छठवीं पक्ति में चौथी और पाँचवीं पंक्ति के कोष्टाङ्कों के अंकों को आधा कर के सातवीं पंक्ति बना लो, किन्तु इसके प्रथम कोष्टक में सदैव शून्य ही रक्खो।

नोटः—इससे भी वही काम निकलता है जो वर्ण-मर्कटी से निकलता है।

———

वर्ण-मर्कटी

चित्र नं० १

वृत्त	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
भेद	२	४	८	१६	३२	६४	१२८	२५६	५१२	१०२४
मात्रा	३	१२	३६	९६	२४०	५७६	१३४४	३०७२	६९१२	१५३६०
वर्ण	२	८	२४	६४	१६०	३८४	८९६	२०४८	४६०८	१०२४०
गुरु	१	४	१२	३२	८०	१९२	४४८	१०२४	२३०४	५१२०
लघु	१	४	१२	३२	८०	१९२	४४८	१०२४	२३०४	५१२०

मात्रा-मर्कटी

चित्र नं० २

१ कला	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
२ भेद	१	२	३	५	८	१३	२१	३४	५५	८९	१४४
३ सब कला	१	२	९	२०	४०	७८	१४८	२७२	४९५	८९०	१५८४
४ गुन	०	१	२	५	१०	२०	३८	७१	१३०	२३५	४२०
५ लघु	१	२	५	१०	२०	३८	७१	१३०	२३५	४२०	७४.
६ वर्ण	१	३	५	१५	३०	५८	१०९	२०१	३६६	६२५	११६०
७ पिण्ड	०	२	४ १/३	१०	२०	३९	७३ १/३	१६३	२७४ ०/३	४४५	७९२

इसी प्रकार अन्य संख्या की मात्राओं के भी मर्कटी-चित्र बना सकते हैं।

परिशिष्ट

हम प्रथम ही यह कह चुके हैं कि छन्दों में कभी कभी किसी दीर्घ वर्ण या स्वर को ह्रस्व तथा कभी किसी ह्रस्व-स्वर या वर्ण को दीर्घ की भाँति अथवा कभी किसी वर्ण को दीर्घ और ह्रस्व दोनों के मध्यस्थ स्वर से उच्चारण करने का संयोग आता है, तथा मात्रा-गणना आदि में इस वैकल्पिक-पाठ-स्वातंत्र्य के कारण प्रायः अन्तर भी पड़ जाता है। हमारे आचार्य्यों ने इस विषय पर कुछ विशेष ध्यान नहीं दिया और कदाचित् इसकी विवेचना एवं व्याख्या इसीलिए नहीं की क्योंकि भाषा की वर्ण-माला में ऐसे स्वर नहीं हैं जिनका उच्चारण दीर्घ एवं ह्रस्व की मध्यगत-ध्वनि के साथ होता है। कदाचित् इसी कारण से कवियों एवं छन्द-शास्त्र के आचार्यों ने ऐसे स्वरों के शुद्ध पाठ को पाठकों के ही ऊपर छोड़ रक्खा है।

चूँकि हमारे भाषा-विज्ञान में प्रथम कोई भी कार्य वैज्ञानिक रूप से नहीं हुआ और वर्ण-माला में नवीन परिवर्तनों को देखते हुए उनके अनुसार पुनरुद्धार एवं सुधार नहीं किया गया, यही कारण है कि यह विषय अनालोचित ही पड़ा रहा।

हिन्दी की वर्णमाला अधिकांश में वही है जो संस्कृत की है, यह बात अवश्य है कि संस्कृत की वर्ण-माला के कतिपय वर्ण ऐसे हैं जिनका प्रयोग हिन्दी के ठेठ शब्दों के रूपों में कभी नहीं होता। हाँ, संस्कृत के तत्सम या शुद्ध शब्दों में भले ही उनका प्रयोग होता है, किन्तु तद्भव या अपभ्रंश एवं बिगड़े हुए (नवावश्यकताओं के कारण सरल किये गये) शब्दों एवं देशज अथवा किसी प्रान्त विशेष की बोली से सम्वन्ध रखने वाले शब्दों में उनका प्रयोग न होकर उनके स्थान पर दूसरे उनसे

सरल वर्णों का प्रयोग होता है। संस्कृत की शब्दावली ऐसे परिष्कृत एवं परिमार्जित रूप में है कि उसके शब्दों में ह्रस्व एवं दीर्घ के बीच वाले स्वर के उच्चारण की आवश्यकता ही नहीं पड़ती, इसीलिये कदाचित् संस्कृत की वर्ण-माला में उसके निर्माणकर्ता विद्वानों ने ऐसे स्वरों को नहीं रक्खा। प्रत्येक भाषा की वर्ण माला में सदैव उन्हीं स्वरों एवं वर्णों का प्राधान्य रहता है जो उस भाषा के शब्दों में निरन्तर प्रयुक्त होते हैं। जो स्वर या वर्ण भाषा के किसी भी शब्द में नहीं आते वे स्वर या वर्ण उस भाषा की वर्ण माला में कदापि नहीं रहते।

हिन्दी भाषा की शब्दावली में संस्कृत-शब्दावली की सी बात नहीं है, उसमें अनेकों ऐसे शब्द हैं, जिनके बोलने में ह्रस्व एवं दीर्घ स्वर के मध्यस्थ स्वर की आवश्यकता होती है, ऐसी दशा में ऐसे स्वरों को वर्ण माला में स्थान देना सर्वथा अनिवार्य्य है। यह बात विशेषतया उस समय अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होती है जब हम ब्रजभाषा तथाच अवधी भाषा की जिनका साहित्य में बहुत ऊँचा एवं महत्व पूर्ण स्थान है, और जिनका पहिले बहुत समय तक हिन्दी के काव्य-साहित्य में पूर्ण प्राधान्य रह चुका है और अब भी अधिकाँश में पाया जाता है, शब्दावली उठाते हैं। हाँ, जब हम अपनी आधुनिक खड़ी बोली की परिष्कृत शब्दावली को लेते हैं, जो अब साहित्य के क्षेत्र में द्रुतगति के साथ अग्रसर हो रही है, तब हमें इसकी आवश्यकता नहीं ज्ञात होती क्योंकि, परिष्कृत खड़ी बोली का शब्द-भण्डार संस्कृत के समान शुद्ध एवं परिमार्जित रूप में होकर ऐसे शब्द नहीं रखता जिनमें ह्रस्व और दीर्घ स्वरों के मध्यस्थ स्वर की आवश्यकता पड़ती हो। अन्य भाषाओं के प्रभाव से प्रभावित होने के कारण हमारी आधुनिक भाषा में शब्दों का एक बहुत बड़ा समुदाय ऐसा आ गया है जिसके

लिए भाषा की वर्ण-माला के कतिपय वर्णों में सुधार एवं संस्कार किये गये हैं, तथा अभी और नये सुधारों की आवश्यकता रखते हैं। इन नये सुधारों में से एक सुधार अथवा आविष्कार कुछ ह्रस्व एवं दीर्घ स्वरों के मध्यस्थ स्वरों की कल्पना करना भी है, जिसकी हमें इस स्थान पर अतीव आवश्यकता प्रतीत होती है क्योंकि इसका प्रमुख सम्बन्ध हमारे काव्याधार छन्द शास्त्र से है।

डाक्टर सर जार्ज ग्रियर्सन को जिन्होंने हिन्दी भाषा में बहुत खोज पूर्ण ऐतिहासिक और वैज्ञानिक कार्य किया है, ऐसे स्वरों की आवश्यकता प्रतीत हुई और उन्होंने ऐसे स्वरों को अँग्रेज़ी भाषा की वर्ण-माला के द्वारा व्यक्त करने के लिए अपनी ओर से कुछ नये विधानों की कल्पना की; और भाषा की वर्ण-माला में भी ऐसे स्वरों के नये रूप दिये हैं:—

† देखो, लिंगुइस्टिक सर्वे आफ इंडिया भाग ३ अ० १

डाक्टर साहब की इस कल्पना में एक बात यह खटकती है कि उन्होंने 'ए' के विशिष्ट रूप के लिए इसके रूप को उलटा कर के रक्खा है अर्थात् 'ए' के रूप का विलोम रूप ही उपयुक्त समझा है और 'ओ' के विशेष रूप के लिए 'ओ' के ऊपर वाली मात्रा को बाईं से घुमाने की अपेक्षा दाहिनी ओर से घुमाकर ही लगा उसे ऊर्ध्वगत 'रेफ' का सा आकार देते हुए रख दिया है। हमें इन रूपों की अपेक्षा पूज्यवर श्रीयुत पं० रामशंकर जी शुक्ल

---

†अन्य भाषाओं से आये हुये कुछ शब्दों के सुद्ध रूपों के लिये भी हमें कुछ नये वर्णों के रचने एवं अपने उपस्थित वर्णों में नये सुधारों के करने की आवश्यकता है।

The Linguistic Survey of India Vol. 3 Part, 1.

'रसाल' एम० ए० के कल्पित किये हुए रूप अधिक उपयुक्त जँचते हैं—

क्योंकि इन रूपों में डाक्टर साहब के रूपों की भाँति विशेष उलझन नहीं है, केवल ऊपर की मात्राओं को ही बाईं ओर से लगाने की अपेक्षा दाहिनी ओर से लगा कर उनके पूर्व रूपों से विलोम रूप में ही रख देना पड़ता है। इनमें न तो डाक्टर साहब की भाँति पूरे अक्षर को उलटना ही पड़ता है और न 'ऊर्ध्व रेफ' के भ्रम होने का ही भय रहता है।* हम फिर भी अपनी भाषा के विद्वानों का ध्यान इस ओर आकर्षित करते हैं और चाहते हैं कि या तो श्रीयुत "रसाल" जी के ही रूप मान लिये जाँय (जिनके मान लेने में कोई हानि एवं आपत्ति नहीं है) या दूसरे नये रूपों की व्यवस्था की जाय, जब तक ऐसा नहीं होता तब तक हम अपने पाठकों से इन्हीं रूपों के प्रयोग करने का अनुरोध करते हैं।

कुछ अन्य आवश्यक छन्दें

नीचे हम कुछ ऐसी छन्दों के नियम और दे रहे हैं जिनका प्रयोग खड़ी बोली के कई लब्धप्रतिष्ठ कवियों ने ख़ूब किया है और जिनका प्रयोग संस्कृत के कवियों के द्वारा संस्कृत-काव्य में वाहुल्य के साथ हुआ है। हाँ, भाषा के माध्यमिक-काल में कवियों ने इनका अवश्य कम व्यवहार किया है।

पञ्चचामर

यह वृत्ति सोलह वर्णों की होती है, तथा इसमें लघु और दीर्घ के क्रम से आठ लघु और आठ दीर्घ वर्ण होते हैं अथवा जगण,

---

* तेलुगू भाषा में 'ऐ' और 'औ' के ह्रस्व रूपों के लिए दो पृथक् चिन्ह पाये जाते हैं—

रगण, जगण, रगण, जगण और एक अन्तिम वर्ण गुरु होता है ; यथा :—

उसी उदार की कथा सरस्वती बखानती ;
उसी उदार से धरा कृतार्थ-भाव मानती ।
उसी उदार की सदा सजीव कीर्ति-कूजती ;
तथा उसी उदार को समस्त सृष्टि पूजती ।

शिखरिणी

यह वृत्ति १७ वर्णों की होती है, तथा इसमें यगण, मगण, नगण, सगण, भगण, और अन्त में एक वर्ण लघु तथा एक वर्ण दीर्घ होता है ; यथा:—

कहाँ स्निग्धा स्निग्धा, सम-वयस वाली रमणियाँ ।
कहाँ निर्वाचा ये, कठिन वनचारी हरणियाँ ॥
लुभाने वाली है, मृदुल-सुख- शय्या भवन की ।
कहाँ ऐसी हा ! हा ! कठिन-धरणी है कुबन की ॥

मन्दाक्रान्ता

यह वृत्ति चार, छः और सात अक्षरों पर विराम के साथ कुल १७ वर्णों अथवा मगण, भगण, नगण और दो तगण दो गुरु वर्णों से बनती है, यथा:—

वैराग्यानन्द-रस जिसने, एक भी बार पाया ।
कोई भी क्या सुरस उसके, चित्त को अन्य भाया ?
पा लेता है सुखद रस जो दिव्य एकान्तता में ।
मीठा प्यारा सुरस सुख है, शान्त एकाग्रता में ॥

सरसी

सत्ताइस मात्राओं से मिलकर १६ और ११ पर यति देते हुए अन्त में गुरू और लघु के साथ सरसी-छन्द बनाया जाता है ; यथा:—

एक मूर्ख निज वृद्ध पिता को, मार रहा था खूब ।
मानो यही अनीति देखकर, सूर्य रहा था डूब ॥
उसी समय संध्या-समीर के, सेवन को स्वच्छन्द ।
निज शिष्यों के साथ ग्राम्य-गुरु, जाते थे सानन्द ॥

ललित-पद

यह छन्द अट्ठाइस मात्राओं से मिलकर, १६ और १२ मात्राओं पर विराम के साथ बनता है तथा इसके अन्त में दो वर्ण गुरु रहते हैं । यथाः—

तुम अपने कर्तव्य-कर्म के ही, हो बस अधिकारी ।
कर्मों के अभीष्ट फल पाने में गति नहीं तुम्हारी ॥

बीर अथवा आल्हा-छन्द

यह छन्द इकतीस मात्राओं का होता है । इसे संयुक्त-छन्द भी कह सकते हैं, क्योंकि इसमें चौपाई और चौपई दो भिन्न भिन्न छन्दें मिलीं रहती हैं यथाः—

सुमिरि भवानी जगदम्बा को, औ शारद को शीस नवाय ।
आदि-सरस्वती तुमका ध्यावौं, माता कंठ विराजौ आय ॥
ज्योति बखानौं जगदम्बा कै, जिनकै कला बरनि ना जाय ।
शरद-चन्द सम आननराजै, अति छबि अंग अंग रही* छाय ॥

*'यहाँ 'रही' शब्द में (ही) यद्यपि दीर्घ ही लिखा जाता है किन्तु उसे लघु ही समझ कर 'रहि' के समान पढ़ना या कहना चाहिये, अन्यथा यहाँ एक मात्रा की वृद्धि हो जावेगी, और छंद अशुद्ध हो जावेगी । इसके स्थान पर 'हि' भी रख कर इस शब्द को 'रहि' भी कर सकते हैं, किन्तु ऐसा करने में अर्थ में अन्तर पड़ जावेगा, क्योंकि रहि (रह कर) पूर्वकालिक क्रिया और 'रही' सामान्य भूत काल की क्रिया है ।

भुजङ्गी

यह वृत्ति तीन यगण तथा एक लघु और एक गुरु मिलकर कुल ग्यारह वर्णों से बनती है। यथाः—

असन्तोष उत्थान का मूल है।
इसे भूलना ही बड़ी भूल है॥
असन्तोष की है न सत्ता कहाँ?
असन्तोष की है महत्ता महाँ॥

नोटः — य तीनों मिला के भुजंगी रचो। यदि इसी के अंत में एक गुरु वर्ण और रख दें तो यही छंद भुजंगप्रयात हो जावेगी।

अरसात

यह सवैया छन्द सात भगण और अन्त में एक रगण से मिलकर बनता है, यथाः—

जा थल कीन्हें विहार अनेकन, ता थल काँकरी बैठि चुन्यों करैं,
जा रसना सों करी बहु बातन, ता रसना सों चरित्र गुन्यों करैं।
'आलम' जौन से कुञ्जन में करी केलि, तहाँ अब सीस धुन्यों करैं,
नैननि में जो सदा रहते, तिनकी अब कान कहानी सुन्यों करैं॥

रूप-घनाक्षरी

यह तीन, तीन, तीन; सात, नौ और सात वर्णों के विराम के साथ ३२ वर्णों की छन्द होती है। इसके अन्त में गुरु और लघु अवश्य होते हैं। यथाः—

कहति गिरा यौं गुनि कमला रमा सौं चलौ,
भारत-मही पै पुनि मंजु छवि छाजैं हम।
राखैं जौ न नैकु टेक जन-मन-रंजन की,
विधि हरि हर की वृथा ही बाम बाजैं हम॥

माष मानि बैठ्यौ ऐंठि लाड़िलौ हमारौ ताकौ,
करि मनुहार सुधा-धार उपराजैं हम।
साजैं सुख सम्पति के सकल समाज आज,
चलि 'रतनाकर' कौं नैसुक निवाजैं हम॥

कुछ मिश्रित-छन्दें

कुण्डलिया

कुण्डलिया-छन्द को हम एक प्रकार का मिश्रित छन्द कह सकते हैं, क्योंकि इसमें, जैसा पहिले लिखा जा चुका है दो छन्दों अर्थात् 'दोहा' और 'रोला' का सम्मिश्रण रहता है। दोनों को एकीभूत करने के लिए दोहे के चतुर्थांश की रोला के प्रथमांश में आवृत्ति कर दी जाती है। साथ ही रोला के अन्तिम पद, शब्द या शब्दों में दोहे के प्रथमांशगत पद; शब्द या शब्दों की आवृत्ति रहती है।

इस छन्द का यही साधारण और सर्वमान्य प्रचलित रूप है। साधारणतया कुण्डलिया के पंचम पद के प्रथमांश में केवल रचयिता का नाम ही रक्खा जाता है किन्तु कहीं कहीं ऐसा न हो कर इसमें भी चतुर्थ चरण के अन्तिमांश की आवृत्ति देखी जाती है, और कहीं कहीं ऐसा नहीं भी होता।

ध्यान रखना चाहिए कि इसमें आवृत्ति या पुनरुक्ति के कारण 'पुनरुक्ति-दोष' नहीं माना जाता, वरन् वीप्सा अथवा पुनरुक्ति-प्रकाश नामी अलङ्कार माने जाते हैं, और कदाचित इन्हीं के आधार पर पुनरुक्ति या आवृत्ति यहाँ रक्खो भी जाती है। यदि कहीं पर ऐसा न जाना पड़े तो यह पुनरुक्ति अवश्य सदोष समझी जानी चाहिए। यह हो सकता है कि आवृत्ति मूलक पदों या

शब्दों का प्रयोग उन्हीं अर्थों में न किया गया हो या न किया जाये जिनमें उनका प्रयोग प्रथम हुआ है, किन्तु इस प्रकार के उदाहरण हमारी समझ में नहीं मिलते।

यह भी ध्यान रखना चाहिये कि दोहे को चतुर्थांश की आवृत्ति प्रायः यथाक्रम और कुण्डलिया की आद्यान्तगत आवृत्ति-यथा क्रम रहती है और कहीं नहीं भी रहती। हम इनके उदाहरण देना उचित नहीं समझते क्योंकि वे तनिक ध्यान दे कर खोजने से सरलतया मिल सकते हैं।

सिंहावलोकन

प्रायः सिंहावलोकन का प्रयोग कवित्त या मनहर छन्दों में ही किया या देखा जाता है। कवित्त के एक चरण के अन्तिम शब्द या शब्दों की द्वितीय-चरण की आदि में आवृत्ति होना ही इसका मूल-मंत्र है। जिस प्रकार कुण्डलिया के आद्यान्तगत अंशों में शब्दैक्य या शब्दावृत्ति रहती है, वैसे ही इसमें भी पाई या रक्खी जाती है। आवृत्ति मूलक वर्ण या शब्द एक ही अर्थ में अथवा भिन्नार्थ में प्रयुक्त किये जाते हैं।

सिंहावलोकन का अर्थ अब हम यों कर सकते हैं:—

यह एक प्रकार की वह विशिष्टावृत्ति है जो चरणों को परस्पर संयुक्त कर देती है।

इसका प्रयोग सवैय्यादि अन्य छन्दों मे भी हो सकता है।

उदाहरण

सिंहावलोकन-कवित्त

छायो है प्रखर ताप-दाप को प्रताप पुञ्ज,
कुञ्ज औ निकुञ्ज लूक हूक सौं सतायो है।

तायो है तवा सौ खासौ भू-तल भभकि भूरि,
नीरम निदाध कोपि जग बिकलायो है ॥
लायो है मयूखनि मयूख भरि भानु इतै,
अगिन दिसा सौं कहै कोऊ कढ़ि आयो है ।
आयो है प्रतप्त ह्वै तहाँ तैं रवि-रथ-हेम,
"सरस बखानै" यह ताको ताप छायो है ॥

सिंहावलोकन-सवैय्या

आवन लागी समा-सुषमा, कुसुमाकर की छबि छावन लागी ।
छावन लागी सुगन्धि भली सुखदाई समीर सुभावन लागी ॥
भावन लागी "रसाल" की बौर, सुभौंर की भीरहु धावन लागी ।
धावन लागी पिकाली अरी, हिय हूक कहूक सों आवन लागी ॥१॥

सर सों बरसों करै नीर अली ! धनु लीन्हें अनङ्ग पुरंदर सों ।
दरसो चहुँओरन ते चपला, करि जाती कृपान के ओझर सों ।
झर सोर सुनाइ हरै हियरा जु किये घन अंबर डंबर सों ॥
बरसों ते बड़ी निसि बैरिन बीतति बासर भो विधि-बासर सों ॥२॥

भ्रमर-गीत

साधारणतया इस मिश्रित-छन्द में प्रथम दो पद तो रोला के और फिर दो पद दोहे के रख कर अन्त में टेक के समान १० मात्राओं का एक पद रक्खा जाता है । यथा:—

रहो जौन विधि सुखी " सरस " हम सोई कीजै ।
सुनि सुनि तुमकौ सुखी, दुखी हम, तौहूँ जीजै ॥
बिरह-ब्यथा वैसेहि दहै, सुनि पुनि तुम्हैं बिहाल ।
होत हाल जो, का कहैं, जानत तुम गोपाल ॥
—ब्यवस्था प्रेम की ॥

नन्ददास जी ने अपने प्रख्यात भँवर गीत के प्रथम छन्द में इसका यह रूप नहीं रक्खा। उन्होंने उसमें रोला के स्थान पर प्रथम दो पद तिलोकी नामी छन्द के (जो यति के लिए चान्द्रायण और गणों के लिए प्लवङ्गम नामी छन्दों का अनुसरण करता है, और जिसमें ११ और १० मात्राओं पर विराम के साथ १२ मात्राएँ होती हैं, तथा आदि में गुरु और अन्त में एक गुरु के साथ में जगण रहता है या मध्य में जगण और अन्त में रगण रहता है) दिये हैं, किन्तु आगे उक्त नियमानुकूल ही इसका रूप रक्खा है।

यह छन्द बहुत ही मधुर और सङ्गीतात्मक है। प्रायः इस छन्द में भ्रमर गीत ही लिखा गया है, इसीलिए यह इसी नाम से विख्यात भी है।

उपजाति

उपेन्द्रवज्रा और इन्द्रवज्रा नामक छन्दों के मिले हुए रूप को कहते हैं। उसके १६ भेद किये गये हैं जिन्हें हम विस्तार-भय से नहीं दे रहे। यथाः—

मुकुन्द ! श्री कान्त ! मुरारि ! कृष्ण,
श्याम ! प्रभो ! दीन दयाल ! मेरे।

छप्पय

जैसा हम पहिले दिखला चुके हैं इसमें चार पद तो रोला और दो पद उल्लाला के रहते हैं और इसीलिए यह मिश्रित छन्द कहा जा सकता है।

इसी प्रकार कुछ और मिश्रित-छन्दों की कल्पना आचार्य्यों एवं कवियों ने की है, जिन्हें हम विस्तार-भय से यहाँ देना ठीक

नहीं समझते। यदि हम चाहें तो अपनी ओर से भी इसी प्रकार की कुछ नई छन्दें बना सकते हैं।

प्रस्तार-सम्बन्धी अन्य मत

जिस मत के अनुसार हमने प्रस्तार का वर्णन किया है वह 'नाग-मत' कहलाता है। यह मत मुख्य एवं सर्वमान्य है, इसके अतिरिक्त तीन मत और भी हैं जो विधि-क्रम में ही इस मत से प्रथक हैं, किन्तु अपने मूल सिद्धान्त इसी मत के अनुसार रखते हैं।

भरत-मत

इसके अनुसार वर्ण-प्रस्तार की विधि यह है कि प्रथम जितने वर्णों का प्रस्तार करना है उतने ही लघु चिन्ह लिखो और फिर बाईं ओर से प्रारम्भ कर के ऊपर की लघु चिन्हों वाली पंक्ति के ऊपर गुरु चिन्ह लिखो और दाहिनी ओर के चिन्ह वैसे ही उतार लो। यदि बाईं ओर कोई स्थान रिक्त रहे तो उसे लघु-चिन्ह से पूरा करो, इस प्रकार करते हुए जब सब चिन्ह गुरु हो जायें तब प्रस्तार को पूरा समझो।

इसके मात्रा-प्रस्तार की रीति यह है कि प्रथम सब लघु लिखकर बाईं ओर से प्रस्तार प्रारम्भ करो और पंक्ति की आदि में जो लघु हो उसे छोड़ उसी के दाहिनी ओर के लघु-चिन्ह के नीचे गुरु लिखते हुए शेष सभी चिन्ह ज्यों के त्यों उतार लो, बाईं ओर मात्राओं की सख्या पूरी करने के लिए लघु-चिन्ह लिखो।

विषम-संख्या के प्रस्तार में जब सर्व गुरु और बाईं ओर एक लघु आवे तब प्रस्तार को समाप्त जानो।

जैन-मत

उक्त भरत मत के विलोम मार्ग पर चलने वाला जैन मत है।

इसके अनुसार प्रस्तार में प्रथम सर्व गुरु लिखकर क्रिया प्रारम्भ करे और दाहिनी ओर वाले गुरु के नीचे लघु लिखकर बाईं ओर के गुरु चिन्ह वैसे ही उतार लो और दाहिने ओर की कमी को गुरु चिन्ह लिखकर पूरा करो।

ध्यान रक्खो कि यह नाग-मत का प्रतिलोम है, क्योंकि नाग-मत में बाईं ओर वाले गुरु के नीचे लघु लिख कर दाहिनी ओर के चिन्ह ज्यों के त्यों उतारे जाते हैं, और बाईं ओर की कमी गुरु लिखकर पूरी की जाती है।

नोटः—विषम-मात्राओं के प्रस्तार में जब एक मात्रा बढ़े तब उसके लिए लघु-चिन्ह दाहिनी ओर रक्खो।

यवन-मत

इसके अनुसार प्रस्तार का प्रारम्भ प्रथम सर्व लघु चिन्ह लिख कर दाहिनी ओर से करो अर्थात् उसी ओर के लघु-चिन्ह के नीचे गुरु-चिन्ह लिखकर बाम ओर के सभी चिन्ह वैसे ही उतार लो और दी हुई संख्या की पूर्ति दाहिनी ओर लघु चिन्हों को रख कर करो। मात्रा-प्रस्तार में यह ध्यान रक्खो कि जब किसी पंक्ति के दाहिनी ओर एक ही लघु-चिन्ह होगा तब उसके नीचे गुरु न लिखा जायगा, हाँ, यदि उसके वाम भागस्थ गुरु के आगे लघु-चिन्ह है तो उसके नीचे गुरु लिखा जाकर उसके बाईं ओर के चिन्ह वैसे ही उतार लिए जायँगे और मात्राओं की संख्या लघु-चिन्हों को दाहिनी ओर बढ़ा कर पूरी की जायगी।

यह मत नाग-मत का वलोम है, और यदि इसके प्रस्तार को उलटा कर के रख दें तो वह स्पष्ट रूप से नाग-मत का प्रस्तार हो जायगा।

नोटः—हमारे दिये हुए नाग-मत के प्रस्तारादि को भली प्रकार समझ लेने पर अन्य मतों के द्वारा प्रस्तार बनाने में कोई भी कठिनता न होगी।

अभ्यासार्थ-प्रश्न

१:—पिङ्गल-शास्त्र किसे कहते हैं और उसका क्या उद्देश्य है।

२:—काव्य और कविता की परिभाषायें देकर इनका अन्तर बताओ।

३:—काव्य के कितने भेद हैं और उसका सङ्गीत से क्या और कितना सम्बन्ध है।

४:—छन्द और वृत्ति में क्या अन्तर है और उनकी रचना का मूल आधार क्या है।

५:—कविता में छन्द की क्यों और कितनी आवश्यकता है।

६:—हिन्दी भाषा ने छन्द-शास्त्र को क्या उपहार दिया है। उसका मार्मिक वर्णन करो।

७:—मात्रा (कला) किसे कहते हैं, कविता में उनका क्या स्थान है।

८:—ह्रस्व एवं दीर्घ (लघु और दीर्घ) का सूक्ष्म-विवेचन करो।

९:—यति और गति की परिभाषायें देते हुए कविता में उनका स्थान और उनसे सम्बन्ध रखने वाले गुण-दोषों का सनियम विवेचन करो।

१०:—गण क्या हैं और कितने हैं, इनकी रचना कैसे हुई।

११—गणों के शुभाशुभ, उनके देवता और फलों का सूक्ष्म वर्णन करो।

१२:—दग्धाक्षर किसे कहते हैं, शुभाशुभ-वर्णों का विवेचन, उनसे सम्बन्ध रखने वाले आवश्यक नियमों के साथ करो।

१३:—छन्द के कितने मुख्य भेद हैं सूक्ष्म रूप से लिखो।

१४:—मात्रिक-छन्दों और वर्णिक-वृत्तियों में क्या अन्तर है स्पष्ट रूप से समझाओ।

१५:—निम्नांकित पद जिन छन्दों के अन्तर्गत हैं, उनके मूल नियम लिखोः—

क:—कहन श्याम सन्देश आज मैं तुम पै आयो।

ख:—आया बसन्त।

ग:—अगणित कपि सेना साथ ले शक्ति केन्द्र।

घ:—वर्षा बिना नाश दवाग्नि का हुआ।

च:—अधिक और व्यथा कितनी सहैं।

छ:—नर हो नर हो तुम कादर हो।

ज:—जहां सदैव दैव की कृपा विराजती रही।

झ:—सुनि रतनाकर की रचना रसीली नव, ढीली परो बीनहिं सुरीली करि ल्याऊँ मैं।

ञ:—जीति रन रावन सौं ठाढ़े रघुनाथ हँसैं, जोरी जय विजय की ठाढ़ी चौंर ढारै है॥

ट:—धनि धनि सरस घइलवा, जग अस कौन।

ठ:—गुन सागर नागर नाथ विभो।

ड:—कैसे बुलाइ तपाऊँ तुम्हैं इन ताती उसाँस समीरन मैं।

१६—मिश्रित-छन्द किसे कहते हैं, कुछ मुख्य मिश्रित छन्दों के लक्षण और नियम लिखो।

१७:—निम्न लिखित समस्याओं की पूर्ति उदाहरणार्थ उपयुक्त छन्दों में करो:—

अ:—पवन बिजना शीतल झलूँ।
ब:—मन भावति है।
स:—ताकी सुधि आवै है।
द:—जहाँ दीखतो थी छटा दिव्य छाई।
य:—तभी नाम होगा।
र:—जो न होय सनमान।
ल:—अँखियान में।
व:—रस है।
स:—वारे हैं।

१८:—प्रस्तार की परिभाषा और उसके भेद लिखो, समझाओ कि प्रस्तार का कविता से क्या सम्बन्ध है।

१९:—प्रस्तार से क्या लाभ है, तथा छन्द-शास्त्र में इसको क्यों और कैसा स्थान दिया गया है।

२०:—सात वर्णों के प्रस्तार के रूप लिखो।
२१:—प्रत्यय क्या है?
२२:—नौ वर्णों के प्रस्तार में सातवाँ रूप क्या होगा।

२३:—भिन्न भिन्न संख्या के वर्ण-प्रस्तारों में पारस्परिक साम्य क्या है।

२४:—उद्दिष्ट की परिभाषा दे कर बतलाओ कि निम्न रूप कौन से भेद हैं:—

(१) ऽ।ऽ।ऽ।ऽ (२) ।ऽऽ।ऽऽ (३) ऽऽ।ऽऽ।
(४) ।।ऽ।।ऽ।।ऽ (५) ऽऽऽऽऽ (६) ।।।।।।

२५:—चार वर्णों का मेरु बना कर मेरु का नियम लिखो और बतलाओ कि इससे क्या लाभ है।

२६ :—बिना मेरु-चक्र बनाये कितने ही वर्णों के प्रस्तार में वर्णों को लघु और गुरु संख्या कैसे बना सकते हो।

२७ :—आठ, दस, बारह, छः, और चौदह वर्णों के प्रस्तार में कितने सब लघु और कितने सब गुरु होंगे।

२८ :—आठ वर्णों के मेरु में आठवीं पंक्ति कैसी होगी।

२९ :—पताका चक्र की विधि एक उदाहरण देकर समझाओ।

३० :— पाँच वर्णों के प्रस्तार में कितने त्रिगुरु होंगे।

३१ :—मर्कटी की विधि और उपयोग लिखो, तथा उसकी परिभाषा उदाहरण देते हुए समझाओ।

३२ :—एकावली मेरु और साधारण मेरु में क्या अन्तर है।

३३ :—खण्ड मेरु की विधि सोदाहरण लिखो।

३४ :—मात्रा प्रस्तार और वर्ण-प्रस्तार में क्या भेद है।

३५ :—मात्रा-उद्दिष्ट की रीति स्पष्ट रूप से लिखो।

३६ :—एकावली मात्रा मेरु कैसे बनता है।

३७ :—मात्रा-पताका में वर्ण-पताका से क्या विशेषता है और इसका उपयोग क्या है।

३८ :—चार मात्राओं की पताका बनाओ।

३९ :—मात्रा-मर्कटी की विधि उदाहरण दे कर लिखो।

४० :—मात्रा मेरु का एक उदारहण देकर उसके मुख्य तत्व लिखो।

४१ :—कुण्डलिया में शब्दों या वर्णों की पुनुरुक्ति, दोष में क्यो नहीं गिनी जाती।

४२ :—कुण्डलिया में आवृत्ति का कहाँ और कितने प्रकार से उपयोग होता है।

४३ :—सिंहावलोकन का कवित्त में क्या स्थान है।

४४ :—सिंहावलोकन के मुख्य कितने रूप होते हैं।

४५ :—सिंहावलोकन और कुण्डलियों की पदावृत्तियों में क्या अन्तर है।

इति शुभम्

शर, वसु, ग्रह, शशि, विक्रमी, सम्वत, अश्विन मास ।
शरद-पूर्णिमा में "सरस", कीन्ह्यौ ग्रन्थ प्रकाश ॥